पूर्व उन्होंने मुझे अपने हाथ से लिखा हुआ अपने वंश के पूर्वजों का विस्तृत इतिहास दिल्ली में दिखाया था और यह इच्छा प्रकट की थी कि मैं उनके पास बैठकर उसकी एक प्रतिलिपि सुन्दर अक्षरों में लिख दूं। तब मैंने यह सङ्कल्प किया था कि मार्गशीर्ष मास में पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर उनके उस आदेश को पूरा करूं। परन्तु कार्तिक के शुक्ल पक्ष में ही वे अपने मर्त्य शरीर को छोड़कर सिद्ध लोकों की ओर प्रस्थान कर गए। उनके द्वारा लिखा हुआ वह स्ववंश वर्णन जिसका नामकरण उन्होंने "वरकल वंश चरितम्" ऐसा किया है। इस समय मेरे पास है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपना "आत्म चरितम्" तथा अपने सम्बन्धियों और गुरुजनों के जो परिचय श्लोकबद्ध करके रखे हैं, वे भी मेरे पास हैं। इसके अतिरिक्त उनकी कई एक 'डायरियां' मेरे पास विद्यमान हैं और उनकी रचनाओं की एक सूची भी है। परन्तु सन् १९२९ अगस्त से सन् १९३० दिसम्बर तक, तथा १-२-३३ से २०-७-३४ तक और ६-८-३५ से २५-६-३९ तथा २३-७-४२ से ३१-१२-६२ तक की कोई भी दैनन्दिनी उनके सामान में कहीं भी नहीं मिली। फिर उन्होंने अपने जीवन की कुछ एक घटनाओं का वर्णन श्री स्वाध्याय के अङ्कों में भी हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया था। वे लेख भी मेरे पास हैं। पूज्यपाद जी के साथ विशेष सहवास के अवसर का सौभाग्य जिन जिन महानुभावों को प्राप्त होता रहा उनसे भी मैं पत्र-व्यवहार कर चुका हूं। फिर उनके संस्मरण, जिन्हें उनके जयपुर वाले भक्तों ने एक पत्रिका के रूप में सन् १९८५ में प्रकाशित किया है, वे भी मेरे सामने हैं। यद्यपि मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उन महानुभावों में से अनेकों की स्मृति शक्ति कुछ कुछ शिथिल हो गई है, और इस कारण से वे उन उन घटनाओं को पूरी तरह से वैसे ढङ्ग से बता नहीं पा रहे हैं जैसे ढङ्ग से उन्होंने उन्हें सुना था, फिर भी उन महानुभावों से सम्पर्क करने से मेरा यह कार्य काफी मात्रा में सुसाध्य बन रहा है। इस प्रकार से सभी स्रोतों से प्राप्त निश्चय के तौर पर सत्य सामग्री के आधार पर ही मैं पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय के इस जीवनचरित को लिख रहा हूं। इस ग्रन्थ में मैं जो लिख रहा हूं, उसे उपरोक्त विश्वसनीय स्रोतों की भलीभान्ति परीक्षा करके उन्हीं के आधार पर लिख रहा हूं। जहां कहीं भी जिस किसी बात को मैं अनुमान के आधार पर लिख रहा हूं, वहां इस बात का वैसा उल्लेख स्पष्टतया कर रहा हूं कि ऐसा मेरा अनुमान है।

सन् १९८३ में पूज्यपाद जी के जयपुर वाले भक्त जनों की प्रेरणा से मैंने महाराज जी की एक अति संक्षिप्त जीवनी उन्हें लिखकर भेज दी थी। उन्होंने "परमपूज्य श्री बाबा महाराज" इस शीर्षक वाली पुस्तिका को प्रकाशित तो किया, परन्तु जो सामग्री मैंने लिखकर भेजी थी उसका विशेष उपयोग नहीं किया। न ही उन्होंने पूज्यपाद जी की जीवन गाथा पर समुचित शोधकार्य ही किया।

स्तोत्र की पाण्डुलिपि मुझे दे गए और उस पर संस्कृत टीका तथा हिन्दी अनुवाद लिखने का आदेश दे गए। उस समय उनके वचनामृत को सुनने का सुअवसर मुझे कुछ दिनों के लिए मिला। उन सर्दियों में वे राष्ट्रालोक के प्रकाशन के सम्बन्ध से एक बार पुनः जम्मू आए और मुझे पुन: उनकी अमृतमयी वाणी को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

आगे ई० सन् १९५८ में मैं उनके दर्शन के लिए ही दिल्ली गया। तदनन्तर सन् १९६० में मैं भरतपुर जाकर कुछ दिन उनके साथ सम्पर्क में रहा। आगे मैं कभी कभी दिल्ली जाता रहा और दो दो तीन तीन दिन उनके सम्पर्क में रहता रहा। परन्तु उनसे विशेष सम्पर्क का सुअवसर मुझे तब मिला जब वे सन् १९६० ई० में कश्मीर आकर अनन्तनाग में मेरे निवास पर दो तीन सप्ताह के लिए ठहरे। ऐसा ही दूसरा सुअवसर मुझे सन् १९६२ में तब मिला जब वे दो तीन सप्ताह हमारे अपने घर में कुलगाम में हमारे साथ ठहरे। उस अवसर पर उन्होंने हमारे घर में "श्रीदेशिकदर्शनम्" और "श्रीसञ्जीवनीदर्शनम्" का निर्माण किया। श्रीसिद्धमहारहस्यं के भी कुछ एक, अंशों का निर्माण उन्होंने वहीं किया। उदाहरणार्थ—श्री कृष्ण दर्शन (तिस्रः स्त्रियों दात्रहस्ता:—इत्यादि) और अमरेश्वर दर्शन के श्लोकों की रचना उन्होंने वहीं पर की। इन दो अवसरों पर उनसे विविध विषयों पर मेरी बातचीत विस्तारपूर्वक होती रही। धर्म, दर्शन, इतिहास, साहित्य जैसे विषयों पर तथा उनकी अपनी जीवनी पर काफी बातें होती रहीं। इस तरह से मुझे उनकी जीवन-गाथा की अनेकों घटनाओं का ज्ञान उन्हीं की वाणी से होता रहा। अपने जीवन की कई एक बातों को तो वे स्पष्टतया सुनाया करते थे। परन्तु उनके अपने परिवार से सम्बद्ध बातों को प्राय: स्पष्ट नहीं किया करते थे। उन बातों का ज़रा भर स्पष्टीकरण वे अपने मर्त्य जीवन के अन्तिम दो तीन वर्षों में करने तो लगे थे, परन्तु उस समय मैं उनके साथ काफी देर तक कभी रहा नहीं। सन् १९६२ के पश्चात् मैं बहुत बार दिल्ली जाता रहा, परन्तु उनसे दो दो या तीन तीन दिन ही कुछ एक घण्टों का सम्पर्क बनता रहा। सन् १९७२ से सन् १९८० तक मैं प्रतिवर्ष उनके जन्म दिवस पर सुहाणा जाता रहा और उनके दर्शन करता रहा। चण्डीगढ़ में भी बहुत बार उनसे मिलता रहा, विशेष कर तब जब वे हमारे जामाता श्री द्वारिका नाथ पण्डित के पास ठहरा करते थे। सन् १९८१-८२ में यदि मुझे उनके साथ पर्याप्त समय तक रहने का कोई अवसर मिला होता तो मुझे उनकी जीवनी की सभी घटनाओं का स्फुट परिचय मिल गया होता। परन्तु इस बात का बड़ा खेद है कि मुझे उन वर्षों में कोई ऐसा अवसर नहीं मिला।

तो मैंने जो जो बातें उनकी ही वाणी से स्वयं सुनी हैं, उन्हीं के आधार पर मैं उनकी इस जीवनी को लिख रहा हूं। शिवलोक के प्रति प्रस्थान से दो ही मास

पूर्व उन्होंने मुझे अपने हाथ से लिखा हुआ अपने वंश के पूर्वजों का विस्तृत इतिहास दिल्ली में दिखाया था और यह इच्छा प्रकट की थी कि मैं उनके पास बैठकर उसकी एक प्रतिलिपि सुन्दर अक्षरों में लिख दूं। तब मैंने यह सङ्कल्प किया था कि मार्गशीर्ष मास में पन्द्रह दिन की छुट्टी लेकर उनके उस आदेश को पूरा करूं। परन्तु कार्तिक के शुक्ल पक्ष में ही वे अपने मर्त्य शरीर को छोड़कर सिद्ध लोकों की ओर प्रस्थान कर गए। उनके द्वारा लिखा हुआ वह स्ववंश वर्णन जिसका नामकरण उन्होंने "वरकल वंश चरितम्" ऐसा किया है। इस समय मेरे पास है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपना "आत्म चरितम्" तथा अपने सम्बन्धियों और गुरुजनों के जो परिचय श्लोकबद्ध करके रखे हैं, वे भी मेरे पास हैं। इसके अतिरिक्त उनकी कई एक 'डायरियां' मेरे पास विद्यमान हैं और उनकी रचनाओं की एक सूची भी है। परन्तु सन् १९२९ अगस्त से सन् १९३० दिसम्बर तक, तथा १-२-३३ से २०-७-३४ तक और ६-८-३५ से २५-६-३९ तथा २३-७-४२ से ३१-१२-६२ तक की कोई भी दैनन्दिनी उनके सामान में कहीं भी नहीं मिली। फिर उन्होंने अपने जीवन की कुछ एक घटनाओं का वर्णन श्री स्वाध्याय के अङ्कों में भी हिन्दी भाषा में प्रकाशित किया था। वे लेख भी मेरे पास हैं। पूज्यपाद जी के साथ विशेष सहवास के अवसर का सौभाग्य जिन जिन महानुभावों को प्राप्त होता रहा उनसे भी मैं पत्र-व्यवहार कर चुका हूं। फिर उनके संस्मरण, जिन्हें उनके जयपुर वाले भक्तों ने एक पत्रिका के रूप में सन् १९८५ में प्रकाशित किया है, वे भी मेरे सामने हैं। यद्यपि मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा है कि उन महानुभावों में से अनेकों की स्मृति शक्ति कुछ कुछ शिथिल हो गई है, और इस कारण से वे उन उन घटनाओं को पूरी तरह से वैसे ढङ्ग से बता नहीं पा रहे हैं जैसे ढङ्ग से उन्होंने उन्हें सुना था, फिर भी उन महानुभावों से सम्पर्क करने से मेरा यह कार्य काफी मात्रा में सुसाध्य बन रहा है। इस प्रकार से सभी स्रोतों से प्राप्त निश्चय के तौर पर सत्य सामग्री के आधार पर ही मैं पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय के इस जीवनचरित को लिख रहा हूं। इस ग्रन्थ में मैं जो लिख रहा हूं, उसे उपरोक्त विश्वसनीय स्रोतों की भलीभान्ति परीक्षा करके उन्हीं के आधार पर लिख रहा हूं। जहां कहीं भी जिस किसी बात को मैं अनुमान के आधार पर लिख रहा हूं, वहां इस बात का वैसा उल्लेख स्पष्टतया कर रहा हूं कि ऐसा मेरा अनुमान है।

सन् १९८३ में पूज्यपाद जी के जयपुर वाले भक्त जनों की प्रेरणा से मैंने महाराज जी की एक अति संक्षिप्त जीवनी उन्हें लिखकर भेज दी थी। उन्होंने "परमपूज्य श्री बाबा महाराज" इस शीर्षक वाली पुस्तिका को प्रकाशित तो किया, परन्तु जो सामग्री मैंने लिखकर भेजी थी उसका विशेष उपयोग नहीं किया। न ही उन्होंने पूज्यपाद जी की जीवन गाथा पर समुचित शोधकार्य ही किया।

अतः उस पुस्तिका में अनेकों ही त्रुटियां रह गईं, तथा अनेकों असङ्गत बातें भी उसमें आ गईं। तभी से पूज्यपाद जी के अन्य प्रेमी शिष्य मुझे उनकी यथार्थ जीवन गाथा को लिखने की प्रेरणा करते रहे।

वस्तुतः उनके जयपुर वाले भक्तजन स्वयं तो पुस्तक लेखन के अभ्यासी नहीं हैं। उन्होंने मेरे द्वारा भेजी हुई सामग्री को तथा श्री स्वाध्याय के अङ्कों में मिलने वाली सामग्री को और पूज्यपाद जी के द्वारा निर्मित ग्रन्थों को किसी संस्कृतज्ञ विद्वान् के सामने प्रस्तुत करके उनसे ही उस उपरोक्त पुस्तिका को लिखवाया। उस पुस्तिका को पढ़ने से हम लोगों को ऐसा प्रतीत हुआ कि वे पण्डित महोदय पूज्य-पाद जी के दार्शनिक सिद्धान्तों से, राजनैतिक विचारों से, सामाजिक दृष्टिकोण से तथा साधना क्रम से विशेष परिचित नहीं हैं। वे पण्डित होने के नाते यथा कथञ्चित् उस संक्षिप्त जीवनी को लिख ही गए। जयपुर के उन भक्तों को भी इस प्रकार की त्रुटियों की संवेदना हुई। तभी उन्होंने सन् १९८५ में पूज्यपाद विषयक स्मृति ग्रन्थ का सम्पादन विशेष सावधानता से किया। उस स्मृति ग्रन्थ से भी पूज्यपाद जी के जीवन वृत्तान्त पर समुचित विस्तार से प्रकाश नहीं पड़ पाया। अतः उस प्रयोजन को पूरा करने के लिए इस पुस्तक का निर्माण किया जा रहा है।

महापुरुषों के प्रेमी भक्तजन बहुत बार भक्ति के आवेश में कुछ ऐसी बातें भी लिखा करते हैं जो वास्तविक इतिहास की घटनाएं नहीं होती हैं, तथा जिनमें अत्युक्तियों का विशेष प्रयोग किया जाता है। पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय को वैसी बातें पसन्द नहीं थीं। अतः मैं यत्न कर रहा हूं कि उनकी यह जीवनी सत्य इतिहास की सीमाओं का उल्लंघन न करने पाये।

पूज्यपाद जी को भिन्न भिन्न देशों में भिन्न भिन्न नामों से जाना जाता था। कश्मीर में उन्हें प्रायः श्री आनन्दस्वरूप कहा जाता था। हिमाचल प्रदेश में भी वे इसी नाम से जाने जाते थे। हमारे मित्र मण्डल और सम्बन्धी वर्ग में उन्हें श्री महात्मा जी कहा जाता था। भरतपुर, जयपुर आदि में उन्हें श्री बाबा महाराज कहते थे। पंजाब में वे श्री महाराज जी कहलाते थे। जन्म से उनका नाम वैद्य-नाथ वरकले था और वाराणसी में वैद्यनाथ शास्त्री कहलाते थे। उधर रहते हुए ही उन्होंने ग्रन्थ लेखक के रूप में अपना नाम 'अमृतवाग्भव' रखा था और आगे पविव्राजक जीवन में ग्रन्थ रचना इसी नाम से किया करते थे। अपने प्रारम्भिक जीवन में रचे हुए 'परमशिव-स्तोत्र' में उन्होंने अपने इस नाम को संकेत से बताया है। इस नाम की व्याख्या करते हुए उन्होंने मुझे स्वयं बताया है कि उनके नाम का प्रथम अक्षर "वै" है। उसमें 'व' अमृतबीज है और 'ऐ' वाग्भव बीज है। अतः 'वै' को अमृतवाग्भव कहा जा सकता है। ऐसे संकेत के अनुसार उन्होंने ग्रन्थ

रचना में अपने आपका उल्लेख इसी नाम से किया। शाक्त साधना के ऐसे संकेत के अनुसार ही उन्होंने अपने परम शिवस्तोत्र में व्यञ्जना का आश्रय लेते हुए कहा है—

सामरस्य समुल्लासः श्री राधाकृष्णयोः परः।
अहमात्मऽमृतासारिवाग्भवो जयताच्चिरम्।।

(प. शि. स्तो. ३)

इस श्लोक में उनके मातपिता श्री राधा और श्री कृष्ण के नामों का भी उच्चारण किया गया है और साथ ही अपने रहस्यात्मक नाम के अक्षरों का भी इसमें उल्लेख किया गया है। त्रिगुणेश्वर स्तोत्र में अपने "वैद्यनाथ" नाम की ओर भी संकेत इस तरह से किया गया है—

यं वैद्यनाथ इति वैद्यजना वदन्ति।

(त्रि. स्तो. ५)

दिल्ली, भरतपुर, सोहाणा, नालागढ़, आदि अनेकों ही स्थानों में रहने वाले पूज्यपाद श्री आचार्य जी के अनेकों भक्त उनके जीवन चरित को जानना चाहते हैं। अतः उसे लिखते हुए उनकी इस शुभ इच्छा को मैं पूरा करने का यत्न कर रहा हूं। प्रकाशन का काम दिल्ली में श्री रत्नलाल जी अग्रवाल "विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान" की ओर से करेंगे।

पूज्यपाद जी के पिछले चार जन्मों के वृत्तान्तों का आधार है कि ई० सन् १६३५ के आसपास जब वे कश्मीर मण्डल में घूमते हुए बारामुला नामक स्थान में भगवती शैलपुत्री के मन्दिर की धर्मशाला में ठहरे थे तो उन्हें वहां एक हिमाचली सन्त महात्मा से परिचय हो गया। उन सन्त महापुरुष को लोग वहां चखमा बाबा कहा करते थे। उनसे पूज्यपाद जी ने एक साधना सीख ली। उसके अभ्यास से उन्हें दो ढाई महीने में ही अपने चार अतीत जन्मों के जीवन की स्मृति जाग उठी। उसी स्मृति के आधार पर उन्होंने अपने उन जन्मों के विषय में जो बातें हमें स्वयं कह दी हैं तथा जो संक्षेप से या विस्तार से स्वयं लिख रखी हैं, उन्हीं के अनुसार उनके पूर्वजन्मों के इतिहास पर भी इस पुस्तक में थोड़ा बहुत प्रकाश डाला जा रहा है। उनके अनेकों शिष्य उन बातों को प्रायः जानते भी हैं। उन जन्मों के चरित का काफी घना सम्बन्ध उनके इस पश्चिम जन्म के साथ है। इस कारण से भी उन जन्मों की गाथा को भी इस पुस्तक में समुचित स्थान दिए जाने में ही औचित्य है।

परमपूज्य श्री आचार्य जी के कई एक शिष्यों ने उनके विषय में अपने संस्मरण लिखे हैं जिन्हें सन् १६८५ ई० में जयपुर वाले भक्तों ने एक पत्रिका के

रूप में प्रकाशित किया। पूज्यपाद जी अपने अतीत जन्मों की उन घटनाओं को सुनाया तो करते थे परन्तु विस्तार से उनका स्पष्टीकरण प्रायः करते नहीं थे। फिर कहने में, सुनने में, समझने में, स्मरण रखने में और पुनः कहने में भी प्रायः काफी अन्तर आ ही जाया करता है। अतः उन संस्मरणों की अपेक्षा मैं उपरोक्त आधारों का ही विशेष आश्रय लेते हुए इस पुस्तक को लिख रहा हूं। हो सकता है कि कहीं कहीं उन संस्मरणों में बताई हुई किसी किसी बात पर मेरा और उन महानुभावों के दृष्टिकोण में या घटना वर्णन में ज़रा ज़रा अन्तर भी आ जाए। उसके लिए मानव प्रवृत्ति ही जिम्मेवार है। मैं तो उन उन घटनाओं को उसी रूप में लिखूंगा जिस रूप में निश्चय के तौर पर मेरे स्मृति पटल पर वह अङ्कित हैं।

श्री पूज्यपाद जी के दिल्ली वाले अनन्य भक्त श्री रत्नलाल जी अग्रवाल को पूज्यपाद जी के साथ चिर-सहवास का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। अतः मैं चाहूंगा कि वे इस पुस्तक को प्रकाशित करने से पहले इसे भली भान्ति पढ़कर जहां जहां 'उन्हें आवश्यकता की संवेदना हो, वहां वहां पृष्ठों के नीचे टिप्पणियों में उन उन विषयों पर प्रकाश डालते हुए उनका स्फुट स्पष्टीकरण करें।

—डा० बलजिन्नाथ पंडित
शा० एम.ए. पी.एच.डी.
C/o रणवीर विद्यापीठ,
जम्मू

श्री भूमिका

॥ श्रीहरिः ॥

प्रपञ्चात्मक जगत के जन्मादि का नियामक अपनी दिव्य वाग्देवी का प्रसार अपने श्वास मात्र से भगवती श्रुति के रूप में करता है। अपौरुषेय वेद की भान्ति वेदाङ्ग तथा 'अ, ई, उ, ण' आदि वर्ण एवं ध्वनियां भी मूलतः नित्य एवं अपौरुषेय ही हैं। वेद एवं वैदिक परम्परा का अनुसारी समस्त इतिहास-पुराणादि वाङ्मय भी अपने मूलरूप में वैसा अपौरुषेय ही है। यह समस्त वाङ्मय वेदानुकूल होने के कारण परमप्रमाण कोटि में आता हुए 'आगम', 'आप्तवचन', 'शब्द', 'शास्त्र' अथवा वेद संज्ञा से ही अभिहित होता है, क्योंकि इसके द्वारा 'येनाक्षरं पुरुषं वेद नित्यम्' इस शास्त्रवचन से नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव, सर्वज्ञ, सर्व शक्ति सम्वलित, सजातीय-विजातीय-स्वगत भेद शून्य एवं सच्चिदानन्द, परमानन्द "आत्मविलास भूत" शिवशक्ति स्वरूप परतत्व का प्रत्यक् चैतन्याभिन्न रूप से दर्शन (साक्षात्कार) होता है। यह दर्शन भी सगुण-साकार-सविकल्प तथा निर्गुण-निराकार-निर्विकल्पोभयविध रूप से होता है।

इस प्रकार की विशुद्ध प्राचीन भारतीय परम्परा ही 'आर्ष' परम्परा इस संज्ञा से अभिहित हुई है तथा प्राचीन ऋषियों ने अपने व्यक्तित्व एवं कृतित्व से प्राणी मात्र के ऐहिकामुष्मिक सर्वविध कल्याण की महामङ्लमय प्रार्थना की है। प्राचीन वसिष्ठ, विश्वामित्र, मनु, याज्ञवल्क्य, वेदव्यास, हारीत आदि ऋषियों का पूर्ण एवं अंशावतार कलियुग में भी सायण, उवट, महीधर, चाणक्य, महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज, धर्मसम्राट विश्ववन्द्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज, पं० दीनानाथ सारस्वत, सर्वतन्त्र स्वतन्त्र अनन्त श्री स्वामी श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज आदि के रूप होता है।

परमपूज्य अनन्त श्री अमृत वाग्भवाचार्य जी महाराज ने अपना समस्त जीवन

प्राचीन आस्तिक शास्त्रीय (धर्म शास्त्रीय एवं दर्शन शास्त्रीय) परम्परा के आचरण, रक्षण, संरक्षण, प्रचार प्रसारादि में लगाया। उनके आचार, व्यवहार, उपदेश तथा आदेश शास्त्र सम्मत-तर्क की कसौटी पर सदैव खरे उतरे। सिद्ध परम्परा, योग परम्परा, शासन परम्परा, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, तथा लोकोत्तर वैदुष्य के वे मानदण्ड थे। अपनी धार्मिक, दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय परम्पराओं की अमिट छाप उन्होंने अपनी शिष्यमण्डली पर छोड़ी।

श्री चरण अपने ग्रन्थों एवं आदेशोपदेशों में शासनपद्धति में धर्म सापेक्ष्यता के कट्टर पक्षपाती रहे। उनका दृढ़ विश्वास था कि तथाकथित धर्म निरपेक्ष अथवा धर्महीन शासन राष्ट्र-कल्याण में सहायक हो ही नहीं सकता। इतिहास प्रसिद्ध धर्म विहीन, तथा कथित धर्म निरपेक्ष्य शासन महाराज वेन का ही हुआ। उसके दुष्परिणाम इतिहास-पुराणादि में प्रसिद्ध है। ब्रह्मवैवर्त पुराण (कार्तिक कृष्ण एकादशी) के अनुसार महाराज मुचुकुन्द विष्णु भक्त एवं सत्यवादी थे; अतएव उनका शासन निष्कण्टक था—

विष्णुभक्तः सत्यसन्धो बभूव नृपतिः सदा।
तस्यैवं शासतो राजन् राज्यं निहरकण्टकम्॥

उनके राज्य में एकादशी का व्रत होता था, उनकी घोषणा "न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं न भोक्तव्यं हरेर्दिने" थी। उनके राज्य में एकादशी के दिन हाथी, घोड़ा एवं अन्य सभी पशुओं को घास अन्न एवं जलं भी नहीं डाला जाता था मनुष्यों का तो कहना ही क्या—

"मत्पितुर्वेश्मनि विभो भोक्तव्यं नैव केनचित्।
गजैरश्वैस्तथा चान्यैरन्यैः पशुभिरेव च॥
तृणमन्नं तथा वारि न भोक्तव्यं हरेर्दिने।
मानवैश्च कुतः कान्त भुज्यते हरिवासरे॥

दानवराज जालन्धर देवताओं को पराजित करता हुआ भी धर्मानुकूल शासन करता था। पद्मपुराण (कार्तिक माहात्म्य, अध्याय ११) के अनुसार दानवेन्द्र जलन्धर धर्मपूर्वक शासन करते हुए प्रजापालन आत्मज-पुत्रों की भान्ति करता था, अतएव उसके राज्य में कोई भी ज्वराक्रान्त, दुःखी, दुर्बल एवं दीन नहीं दीखता था। इस शासन का वर्णन देवर्षिनारद महाराज पृथु से करते हैं—

"एवं जलन्धरः कृत्वा देवान् स्ववशवर्तिनः।
धर्मेण पालयामास प्रजाः पुत्रानिवौरसान्॥
न कश्चिद्व्याधितो नैव दुःखिता न कृशस्तथा।
न दीनो दृश्यते तस्मिन् धर्मराज्यं प्रशासति॥

धर्मशासन से दु:ख, दारिद्रय, अन्न संकट, पशुओं के चारे का संकट सभी संकट स्वयमेव दूर हो जाते हैं। श्रीचरणों ने अपने आचरण, उपदेश एवं राष्ट्रालोकादि ग्रन्थों में धर्म सापेक्ष्य शासन तन्त्र का प्रतिपादन किया।

महाराजश्री का प्रत्येक वचन शास्त्रीय आर्षपरम्परा का प्रतिपादक होता था। प्राय: ४५ वर्ष पूर्व हरिद्वार के कुम्भ के अवसर पर श्रीचरणों द्वारा विरचित "आत्मविलास" पर कतिपय पण्डितों ने "यह ग्रन्थ अशास्त्रीय है" ऐसा कहकर ग्रन्थ की कटु आलोचना की। यही ग्रन्थ वहीं पर समुपस्थित विश्ववन्द्य अनन्तश्री विभूषित धर्मसम्राट् स्वामी श्री करपात्री जी महाराज की सम्मति के लिए भी पहुंचा। पूज्यपाद स्वामी जी ने ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ कर कहा "यह आत्मविलास सर्वथा शास्त्रीय एवं समादरणीय है।" अपनी लोकलीला के अन्तिम वर्ष में महाराजश्री अमृतवाग्भवाचार्य जी ने इस शरीर से अपने काशीवास की इच्छा प्रगट की। काशी में इस विषय का एक पत्र अनन्त श्री स्वामी नन्दनन्दनानन्द सरस्वती जी महाराज की सेवा में इस ही शरीर ने लिखा। स्वामी जी ने वह पत्र महाराजश्री स्वामी करपात्री जी को सुनाया। धर्मसम्राट् स्वामी करपात्री जी ने स्वामी अमृतवाग्भवाचार्य जी के निवास का प्रबन्ध करने का आदेश दिया। यह पूछे जाने पर कि उनको कहां ठहराया जायगा, धर्मसम्राट् श्री करपात्री जी ने तुरन्त उत्तर दिया, "वह केवल हमारे साथ ही रहेंगे।" इस प्रकार की विलक्षण थी पहचान सच्चे साधु की सच्चे साधु को।

महाराज श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी द्वारा स्वहस्ताक्षराङ्कित विद्वद्वरकल श्रीराधाकृष्ण धार्मिक संस्थान का संविधान उनका "वसीयतनामा" अन्तिमादेशोपदेश है। उसमें उन्होंने वेद पुराणेतिहास प्रतिपादित धर्म, वर्णाश्रम व्यवस्था, गौरक्षा तथा अन्य सभी प्राचीन संस्कृतिक मूल्यों के पालन का आदेश दिया है। आत्मकल्याण के सन्मार्ग का प्रदर्शक यह "वसीयतनामा" आचरणीय है यथा—श्रीमद् भागवत (१०.३३.३२) में भगवान् श्री शुकदेव ने स्पष्ट आदेश दिया है—"ईश्वर (कोटि प्रविष्ट) महापुरुषों के वचन सत्य होते हैं, इस प्रकार उनके चरित्र भी कभी सत्य होते हैं। (कभी जीव बुद्धि से परे के होते हैं।), एतदर्थ उन्होंने जो अपने वचन से (मुख से) कहा हो बुद्धिमान को उसका प्रयत्न पूर्वक आचरण करना चाहिए"—

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्।
तेषां यत् स्ववचोयुक्तं बुद्धिमास्तत् समाचरेत्॥

अतएव शिष्य मण्डली एवं प्राणीमात्र का कल्याण श्रीचरणों के उस "वसीयतनामें के परिपालन मात्र में है। एतदतिरिक्त उनके सभी ग्रन्थों तथा आदेशोपदेशों में

प्राप्त विधि-निषेध सम्यक् परिपालनीय कल्याण सेतु तथा भवरोग की रामबाण औषधी है।

उनका धर्मसामान्य एवं सन्यासाश्रम धर्मपालन भी उत्कृष्ट कोटि का था। अपने जीवनकाल में ही अपने अन्तिम संस्कार का शास्त्रीय सन्यास पद्धति से हरिद्वार श्री गंगा जी में जल समाधी का आदेश दे गए थे। तथा इस कार्य का उत्तरदायित्व इस शरीर पर छोड़ गए। यह श्रीचरणों की महती कृपा थी। महाराजश्री की लोक लीला संवरण करने के पश्चात् विधिवत् उनकी जल समाधी श्रीगंगा जी में सम्पन्न हुई।

श्री वैवस्वत मन्वतर के श्री श्वेत वाराहकल्प के अट्ठाईसवें कलियुग के प्रथम चरण में जीव नास्तिकता की चकाचौंध में भ्रमित हो रहा है। प्रकाश्यमान साहित्य महाभयंकर इस नास्तिकता में चार चाँद लगा रहा है। एतत्तकालीन समाज, समाज शास्त्र राजनीति एवं शासन तन्त्र धर्म एवं ईश्वर पराङ्मुख हो रहे हैं। तथाकथित नेताओं के जीवनवृत्त दिशा-विहीनता के ज्वलन्त उदाहरण हैं। नास्तिक एवं तत्वज्ञानशून्य जनसम्मर्द "अन्धगोलाङ्गूल न्याय" से महासर्वनाश में प्रवृत्त है तथा अपने को परमकृतार्थ एवं परमपण्डित – धीर-वीर-उपदेष्टा मानता है। भगवती श्रुति ने ऐसे लोगों का भी रहस्योद्घाटन किया है—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीरा पण्डितं मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणा परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धः॥

(कठोपनिषद् २/५)

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यीभ मन्यन्ति बालाः॥

(मुण्डकोपनिषद् २/६)

ऐसी सर्वथा विपरीत एवं नारकीय स्थिति से बचने का एकमात्र उपाय वेद एवं तदनुकूल सच्छास्त्रीय परम्परा पर आधारित महापुरुषों के चरितामृतों से सन्मार्गान्वेषणमात्र ही हैं। अनन्त श्री स्वामी श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज अमृतबीज "व" एवं वाग्भवबीज 'ऐं' (वै-वैद्यनाथ मूल संज्ञा) आधार थे। उनका प्रत्येक क्रिया कलाप मोक्ष-सोपान है निःश्रेयस बीज है। श्रीचरण सर्वतन्त्रस्वतन्त्र तत्वविद्वरिष्ठ थे। जीवनकाल में जीवनमुक्त तथा लोक लीला संवरणानन्तर शिवस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप एवं परमात्म स्वरूप हो गए। उनकी लोकलीला एवं जन्मान्तरों का वर्णन करके विश्रुतकीर्ति, महामहिम, समादरणीय, पुण्यश्लोक, प्रातः स्मरणीय डा० श्री बलजिन्नाथ पण्डित शास्त्री जी ने महान उपकार किया है। यह ग्रन्थ दिव्य सारस्वत साधना, गवेषणा एवं श्रीचरणों की डा० साहिब पर अपार कृपा का प्रसाद है। इसके अध्ययन से नास्तिकता समाप्त होगी, आस्ति-

कता, मोक्ष एवं भगवत्परायणता का रहस्योद्घाटन होगा। ऐसा मेरा विश्वास है। श्रीचरणों के ग्रन्थों के रहस्योद्घाटन में डा० बलजिन्नाथ पण्डित जी ने अपने को समर्पित करके प्राणीमात्र के कल्याण का परोपकार मार्ग खोल रखा है। श्री मन्नारायण इन पर अपने कृपामृत की वर्षा करते हुए शताधिक आयु प्रदान करें जिससे धर्म सेतु सुरक्षित रह सके। इस ग्रन्थ के प्रकाशन के प्रायः मौन कर्णधार श्री रत्नलाल जी अग्रवाल स्वयं ही संस्था, नेता एवं कार्यकर्ता हैं। उनके जीवन का लक्ष्य भी महाराजश्री के द्वारा उपदिष्ट शाश्वत मूल्यों का प्रकाशन एवं प्रचार ही है। श्री मन्नारायण इन्हें भी सफल दीर्घायुष्य प्रदान करें। इतिशम्।

कार्तिक कृष्ण
एकादशी वि० स० २०४६
(अक्तूबर २५, १९८९)

डा० रघुनाथ शर्मा
एम०ए०, पी-एच, डी०
(उपाध्यक्ष)
रीडर संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

प्राप्त विधि-निषेध सम्यक् परिपालनीय कल्याण सेतु तथा भवरोग की रामबाण औषधी है।

उनका धर्मसामान्य एवं सन्यासाश्रम धर्मपालन भी उत्कृष्ट कोटि का था। अपने जीवनकाल में ही अपने अन्तिम संस्कार का शास्त्रीय सन्यास पद्धति से हरिद्वार श्री गंगा जी में जल समाधी का आदेश दे गए थे। तथा इस कार्य का उत्तरदायित्व इस शरीर पर छोड़ गए। यह श्रीचरणों की महती कृपा थी। महाराजश्री की लोक लीला संवरण करने के पश्चात् विधिवत् उनकी जल समाधी श्रीगंगा जी में सम्पन्न हुई।

श्री वैवस्वत मन्वतर के श्री श्वेत वाराहकल्प के अट्ठाईसवें कलियुग के प्रथम चरण में जीव नास्तिकता की चकाचौंध में भ्रमित हो रहा है। प्रकाश्यमान साहित्य महाभयंकर इस नास्तिकता में चार चाँद लगा रहा है। एतत्तकालीन समाज, समाज शास्त्र राजनीति एवं शासन तन्त्र धर्म एवं ईश्वर पराङ्मुख हो रहे हैं। तथाकथित नेताओं के जीवनवृत्त दिशा-विहीनता के ज्वलन्त उदाहरण हैं। नास्तिक एवं तत्वज्ञानशून्य जनसम्मर्द "अन्धगोलाङ्गूल न्याय" से महासर्वनाश में प्रवृत्त है तथा अपने को परमकृतार्थ एवं परमपण्डित — धीर-वीर-उपदेष्टा मानता है। भगवती श्रुति ने ऐसे लोगों का भी रहस्योद्घाटन किया है—

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीरा पण्डितं मन्यमानाः।
दन्द्रम्यमाणा परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धः॥

(कठोपनिषद् २/५)

अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यीभ मन्यन्ति बालाः॥

(मुण्डकोपनिषद् २/६)

ऐसी सर्वथा विपरीत एवं नारकीय स्थिति से बचने का एकमात्र उपाय वेद एवं तदनुकूल सच्छास्त्रीय परम्परा पर आधारित महापुरुषों के चरितामृतों से सन्मार्गान्वेषणमात्र ही हैं। अनन्त श्री स्वामी श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज अमृतबीज "व" एवं वाग्भवबीज 'ऐ' (वै-वैद्यनाथ मूल संज्ञा) आधार थे। उनका प्रत्येक क्रिया कलाप मोक्ष-सोपान है निःश्रेयस बीज है। श्रीचरण सर्वतन्त्रस्वतन्त्र तत्वविद्वरिष्ठ थे। जीवनकाल में जीवनमुक्त तथा लोक लीला संवरणानन्तर शिवस्वरूप, ब्रह्मस्वरूप एवं परमात्म स्वरूप हो गए। उनकी लोकलीला एवं जन्मान्तरों का वर्णन करके विश्रुतकीर्ति, महामहिम, समादरणीय, पुण्यश्लोक, प्रातः स्मरणीय डा० श्री बलजिन्नाथ पण्डित शास्त्री जी ने महान उपकार किया है। यह ग्रन्थ दिव्य सारस्वत साधना, गवेषणा एवं श्रीचरणों की डा० साहिब पर अपार कृपा का प्रसाद है। इसके अध्ययन से नास्तिकता समाप्त होगी, आस्ति-

कता, मोक्ष एवं भगवत्परायणता का रहस्योद्घाटन होगा। ऐसा मेरा विश्वास है। श्रीचरणों के ग्रन्थों के रहस्योद्घाटन में डा० बलजिन्नाथ पण्डित जी ने अपने को समर्पित करके प्राणीमात्र के कल्याण का परोपकार मार्ग खोल रखा है। श्री मन्नारायण इन पर अपने कृपामृत की वर्षा करते हुए शताधिक आयु प्रदान करें जिससे धर्म सेतु सुरक्षित रह सके। इस ग्रन्थ के प्रकाशन के प्रायः मौन कर्णधार श्री रत्नलाल जी अग्रवाल स्वयं ही संस्था, नेता एवं कार्यकर्ता हैं। उनके जीवन का लक्ष्य भी महाराजश्री के द्वारा उपदिष्ट शाश्वत मूल्यों का प्रकाशन एवं प्रचार ही है। श्री मन्नारायण इन्हें भी सफल दीर्घायुष्य प्रदान करें। इतिशम्।

कार्तिक कृष्ण
एकादशी वि० स० २०४६
(अक्तूबर २५, १९८९)

डा० रघुनाथ शर्मा
एम०ए०, पी-एच, डी०
(उपाध्यक्ष)
रीडर संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

स्वात्मानं स्वविलासेन विश्वरूपेण भासयन् ।
नित्योदितः कोऽपि देवो जयत्यात्मा परः शिवः ॥

—आत्मविलास से

॥ श्रीः ॥

सम्पादकीय

ध्यान मूलं गुरु मूर्ति, पूजामूलं गुरु पदम्।
मन्त्र मूलं गुरु वाक्यं, मोक्षमूलं गुरु कृपा॥

विद्वद्वरेण्य डा० बलजिन्नाथ पंडित विरचित, चिर प्रतीक्षित, श्रीमद् अमृत-वाग्भवाचार्य (चरितामृत) ग्रन्थ का प्रकाशन करते हुए संस्था को अपूर्व आह्लाद एवं संतोष का अनुभव हो रहा है। ग्रन्थ पर्याप्त रूप से विस्तृत है और प्रातः स्मरणीय, सिद्धलोकवासी, अनन्तश्री विभूषित पूज्यपाद स्वामी श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी महाराज के पावन एवं विशद् जीवन पर आद्योपान्त अर्थात् जन्म से शिवधाम गमण पर्यन्त विविध दृष्टिकोणों से प्रकाश डालता है। यही नहीं अपितु पूज्यपाद 'आचार्य-श्री' के कई महामहिमा-मण्डित' पूर्वजों के इतिहास का समुचित वर्णन भी प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है। पूज्यपाद जी का जन्माङ्क उनके कतिपय दुर्लभ चित्र और कुछेक स्वानुभूत दिव्य दृश्यों के चित्र भी इस ग्रन्थ की शोभा बढ़ाते हैं। पूज्यपाद जी द्वारा समय समय पर रचित विविध ग्रन्थों एवं उनमें प्रतिपादित उनके दार्शनिक सिद्धांतों का सारगर्भित विवेचन भी प्रस्तुत ग्रन्थ में किया गया है। इन सभी कारणों से डा० सा० की यह अमर-कृति हर प्रकार से समादरणीय तो है ही साथ ही यह उनकी समुज्ज्वल कीर्ति को सदैव अक्षुण्ण बनाये रखने में भी सक्षम है, क्योंकि ऐसे दिव्य सिद्ध महापुरुष के जीवन-ग्रन्थ का ग्रन्थकार भी कोई कम महापुरुष नहीं हो सकता।

यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पूज्यपाद गुरुवर श्रीमद् अमृत-वाग्भवाचार्य जी महाराज के ग्रन्थों की प्रामाणिक और सटीक व्याख्या करने में डा० सा० की निर्बाध गति है। एक आध को छोड़कर उनके लगभग सभी ग्रन्थों की हिन्दी/संस्कृत व्याख्या करने का सौभाग्य डा० सा० को ही प्राप्त है। स्वयं 'आचार्य-श्री' ने अनेक बार इस सत्य को न केवल स्वीकार किया है बल्कि श्री-मुख से, मुक्त कण्ठेन डा० सा० के वैदुष्य की प्रशंसा भी की है।

आपको स्मरण होगा कि ३०-६-८२ तदनुसार आषाढ़ शुक्ल दशमी, सं० २०३९ (स्व-जन्मदिवस) के अवसर पर पूज्यपाद जी ने विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धा० संस्थान, दिल्ली की स्थापना की थी। आगे सन् १९८६ में इस संस्था को दिल्ली संघ राज्य सरकार द्वारा पंजीकृत कर दिया गया। कालान्तर में जब कार्तिक शुक्ल अक्षय नवमी वि० सं० २०३९ (२४-११-८२) को पूज्यपाद जी ने इस दिल्ली महानगर में अपने भौतिक शरीर को त्याग कर सिद्ध लोकों की ओर उत्क्रमण किया तो सभी ओर से उनके जीवन वृत्त को समुद्घाटित करने की मांग उठने लगी। परन्तु प्रश्न यह था कि इस श्रम-साध्य कार्य को कौन करे और कैसे करे। पूज्यपाद जी ने कब और किन परिस्थितियों में परिव्राजक जीवन में प्रवेश किया, उससे पूर्व वे क्या करते थे, कहा रहते थे, उनकी शिक्षा दीक्षा कब और कहां हुई वे किस वंश या कुल से सम्बन्धित थे उन्होंने कौन सा ग्रन्थ कब कहां लिखा इत्यादि अनेकों रहस्य थे जिन का सन्तोषजनक और यथार्थ उत्तर किसी के पास था ही नहीं, कारण यह था कि स्वयं पूज्यपाद जी ने विस्तृत रूप से इस प्रकार की व्यक्तिगत जानकारी किसी को दी नहीं थी और उनसे इस प्रकार के प्रश्न पूछने का साहस किसी को कभी हुआ ही नहीं। परिणामतः उनके जीवन की गाथा लिखना पूज्य डा० बलजिन्नाथ के ही शब्दों में "शोध कार्य" से कम नहीं था।" बहुत सोच विचार के पश्चात संस्था ने, इस समस्या के समाधान के लिए पूज्य डा० सा० की शरण में ही जाने का निर्णय किया। वे प्रतिवर्ष पूज्यपाद जी की वार्षिक पुण्यतिथि एवं संस्था के वार्षिकोत्सव के अवसर पर दिल्ली पधारा करते हैं। ऐसे ही एक अवसर पर पूज्य डा० सा० से जब इस आशय का निवेदन किया गया तो उन्होंने इसे सहर्ष स्वीकार किया। तथापि उनके लिए भी कई कारणों से इस कार्य को तुरन्त हाथ में लेना सम्भव नहीं था। एक तो वे पहले से ही रणवीर विद्यापीठ, जम्मू द्वारा शैव दर्शन से सम्बन्धित पारिभाषिक शब्द कोष के निर्माण में अतीव व्यस्त थे और निर्धारित अवधि के अन्तर्गत उसे पूरा करने के प्रति वचनबद्ध थे। दूसरे स्वयं पूज्यपाद जी ने उन्हें "श्री पीठ" की ओर एक विशेष क्रमानुसार अपने कई ग्रन्थों के प्रकाशन का दायित्व सौंप रखा था। तथापि उन्होंने अपने सतत अथक प्रयत्नों द्वारा पूज्यपाद जी के इस विस्तृत जीवन ग्रन्थ को लिखकर तैयार कर ही दिया और गत वर्ष उनकी वार्षिक पुण्यतिथि के अवसर पर उसकी पाण्डुलिपि को दिल्ली लाकर प्रकाशनार्थ संस्था को सौंप दिया। इस प्रकार पूज्य डा० सा० की साधना और गुरु चरणों में निष्ठा ही ग्रन्थ रूप में साकार होकर हमारे समक्ष है। अपनी इस अविस्मरणीय अहैतु की सेवा से उन्होंने न केवल पूज्यपाद जी के प्रेमी भक्तों की जिज्ञासा का ही शमण किया अपितु हिन्दु जाति बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति पर जो उपकार किया है उससे

उऋण हो पाना सर्वथा असम्भव है। गुण ग्राहक पाठक वृन्द ग्रन्थ के अध्ययन के पश्चात् स्वयं ही यह अनुभव कर लेंगे, ऐसा विश्वास है।

पूज्य डा० सा० ने ग्रन्थ के प्राक्कथन में इस शरीर पर यह दायित्व डाल दिया कि प्रकाशन से पूर्व मैं इसकी सम्पूर्ण पाण्डुलिपि को ध्यान पूर्वक पढ़कर जहां आवश्यकता हो अपेक्षित स्पष्टीकरण करूं। उनके ऐसे आदेश को यहां अक्षरशः उद्धृत करना अधिक संगत होगा—

"श्री पूज्यपाद जी के दिल्ली वाले अनन्य भक्त श्री रत्नलाल जी अग्रवाल को पूज्यपाद जी के साथ चिर सहवास का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। अतः मैं चाहूंगा कि वे इस पुस्तक को प्रकाशित करने से पहले इसे भली भांति पढ़कर जहां-जहां आवश्यकता की संवेदना हो वहां पृष्ठों के नीचे टिप्पणियों के रूप में उन उन विषयों पर और प्रकाश डालते हुये उनका स्फुट स्पष्टीकरण करें।"

अतः मैंने डा०सा० के आदेशानुसार उनके द्वारा लिखित सामग्री की एक फोटो कापी तैयार करवा ली और उसमें यत्र-तत्र उल्लिखित विभिन्न तिथियों, तथ्यों तथा व्यक्तियों और स्थानों के नामों की यथा सम्भव अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से जांच की है और तथ्यगत त्रुटियों का समुचित परिमार्जन किया है। इसके अतिरिक्त अपरिहार्य स्थिति में अत्यावश्यक संशोधन/परिवर्तन भी किया है। विशेष रूप से अन्तिम दो अध्यायों की सामग्री जो कि 'स्वतंत्र परिव्रजन' और 'जीवन का अन्तिम दौर शीर्षक से लिखी गई है, में पर्याप्त परिवर्धन भी करना पड़ा है'। ऐसी अधिकतर घटनायें पूज्यपाद जी के दिल्ली प्रवास से सम्बन्धित हैं। ऐसा पूज्य डा०सा० की चरण रज को शिरोधार्य करकेउनसे मानसिक रूप से आज्ञा लेकर ही किया है। अन्यथा इस 'अल्पज्ञ' के पास इतनी योग्यता कहां है कि पूज्य डा०सा० के द्वारा निर्मित सामग्री में किसी 'अर्द्ध विराम' के स्थान में भी परिवर्तन कर सके।

परन्तु वास्तविक और अत्यंत जटिल समस्यायें तो तब उभर कर सामने आई जब कार्यकारिणी के निर्णय के अनुसार ग्रन्थ के मुद्रण का कार्य प्रेस को सौंप दिया गया। एक ओर से मूल सामग्री के सम्पादन का कार्य पूरे मनोयोग से प्रारम्भ किया और दूसरी ओर से प्रूफ शोधन के लिए पृष्ठ आने लगे। तीसरी ओर से कागज़ की व्यवस्था के लिए दौड़-धूप। चौथी ओर से पर्याप्त धन और अनुभव का अभाव। मैं किं कर्तव्यविमूढ़ सा हो गया था। परन्तु हम लोगों के पास प्रत्येक विपत्ति से त्राण पाने को मात्र एक ही चिंतामणि है—वह है 'गुरु कृपा पर विश्वास' (पूज्यपाद गुरुवर्य का स्मरण करते ही सभी समस्यायें स्वमेव समाधान को प्राप्त हो गईं।)

कागज का प्रबन्ध बहुत ही विश्वसनीय विक्रेता (मारुति पेपर हाऊस) द्वारा

कर दिया गया। अनावश्यक दौड़-धूप करने की आवश्यकता ही नहीं पड़ी। 'मुद्रण' और 'ब्लॉक' इत्यादि की व्यवस्था तो और भी अधिक सुचारु ढंग से हो गई। इसके लिये **'पंकज'** और **'वन्दना'** प्रेस के प्रबन्धक क्रमशः श्री त्रिपाठी जी और श्री तिवाड़ी जी धन्यपाद के पात्र हैं। उनके सहयोग और आत्मीयता-पूर्ण व्यवहार के बिना ग्रन्थ का इतनी त्वरित गति से प्रकाशन कदापि संभव नहीं हो पाता।

अपने आत्मीय सुहृद एवं सहयोगी श्री माधव शर्मा, (एम० ए०) का भी मैं अन्तरात्मा से आभारी हूं जिन्होंने अपना बहुमूल्य योगदान ग्रन्थ के प्रूफ-शोधन इत्यादि कार्यों में देकर प्रकाशन को सुनिश्चित बनाया।

अंत में मैं अपना सर्वोपरि अभार करुणा वरुणालय पूज्यपाद श्री गुरुवर्य के पावन चरणारवृन्द में अर्पित करते हुते स्वयं को कृतकृत्य और परम सौभाग्यशाली मानता हूं जिनकी सद्प्रेरणा से मैं यह 'तुच्छाति तुच्छ' सेवा कर पाने में समर्थ हो सका। मेरे इन प्रातः वन्दनीय गुरुदेव के पदपाथोज़द्वय सदैव मेरे हृदय में विराजमान रहें, यही निवेदन है। इनकी कृपा की छत्रछाया में ही मेरा जीवन रूपी वृक्ष अंकुरित पल्लवित और पुष्पित हुआ है। अंकुरित तो तब हुआ जब २४ दिसम्बर सन् १९६१ को इन्होंने मुझे सुहाणा में बुलाकर रवि, पुष्य नक्षत्र में शिव-मन्त्र की दीक्षा देकर कृतार्थ किया। पल्लवित तब हुआ जब अपनी विशेष प्रेरणा द्वारा वे मुझे पञ्जाब से एक साधारण अध्यापक के पद से मुक्ति दिलाकर दिल्ली ले आये और यहां उच्च-न्यायालब में एक राज-पत्रित अधिकारी के पद पर नियुक्त करवा दिया। मैंने उसे पुष्पित हुआ तब माना जब उन्होंने मुझ अस्थायी रूप से तीस हजारी न्यायालय में स्पेशल मजिस्ट्रेट की कुर्सी पर बिठा दिया। आज यदि इन सब का उल्लेख मैं नहीं करता हूं तो यह मेरी कृतघ्नता होगी, क्योंकि यह सब घटित होने की भविष्यवाणी तो अनन्त 'श्री जी' महाराज, मेरा जन्म पत्र देख कर सन् १९५९ में खरड़ में कर चुके थे। उनकी कृपा का कोई वारापार मैं नहीं देखता। सिद्ध लोकों के प्रति प्रस्थान करने के पश्चात् भी उन्होंने हमारे वर्तमान (उच्च-न्यायालय स्थित) आवास में मेरी गृहिणी को एक दिन साक्षात् प्रकट होकर दर्शन देकर कृतार्थ किया।

नई दिल्ली
चन्द्रवार, कार्तिक शुक्ल प्रतिपदा
वि० संग १९४६
तदनुसार ३० अक्तूबर ई० सन् १९८९

रत्नलाल अग्रवाल
(एम० ए० एल० एल० बी०)
कोषाध्यक्ष, वि० व
श्री राधाकृष्ण धा० संस्थान
दिल्ली।

सम्मतियाँ

(१)

अनन्तश्रीविभूषित
जगद्गुरु शङ्कराचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर
स्वामी श्री निरञ्जन देव तीर्थ जी महाराज
गोवर्धनमठ, पुरी (उड़ीसा)।

कार्तिक कृष्ण १३,
वि० सं० २०४६

स्वामी श्री अमृतवाग्भवाचार्य वेदशास्त्रानुगामी महापुरुष महात्मा थे। वह आजीवन गो, विप्र, वेद, सती, सत्यवादी, अलुब्ध, दानशील इन सात महीधारक स्तम्भों के तथा वेदपुराणेतिहास प्रतिपादक धर्म एवं वर्णाश्रम मर्यादा के पालक, रक्षक एवं प्रचारक रहे। अपनी मूल विचारधारा में वह अखिल भारत वर्षीय धर्मसंघ के संस्थापक धर्मसम्राट् विश्ववन्द्य स्वामी श्री करपात्री जी महाराज एवं ब्रह्मलीन जगद्गुरु शङ्कराचार्य ज्योतिषपीठाधीश्वर स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रम जी महाराज के हृदय से अनुगामी प्रशंसक थे।

डा० पण्डित बलजिन्नाथ द्वारा लिखित उनका जीवनवृत्त उनके भक्तों को शास्त्रीय धर्म, प्राचीन भारतीय मूल्यों एवं गोरक्षा में प्रेरित करेगा ऐसी हमारी आशा है। विद्वद्वरकल श्री राधाकृष्ण धार्मिक संस्थान को धार्मिक गतिविधियों में मङ्गल कामना करते हैं।

—निरञ्जन देव तीर्थ
जगद्गुरु शंकाचार्य गोवर्धनपीठाधीश्वर
अध्यक्ष—अ० भा० धर्मसंघ तथा अ० भा०
सर्वदलीय **गोरक्षा महाभियान** समिति

अनन्तश्रीविभूषित
स्वामी श्री नंदनंदनानंद सरस्वती जी महाराज
एम० ए०, एल० एल० बी०, भूतपूर्व संसद सदस्य,
उपाध्यक्ष अ० भा० धर्मसंघ
केदार घाट, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)

श्री वैद्यनाथ ही आनन्दस्वरूप से परमानन्दात्मक अमृतवाग्भव होकर अपनी अमृतनियन्दिनी वाणी से धर्म एवं दर्शन के गूढतम रहस्यों के उद्घाटन में आजीवन प्रवृत्त रहे। उनकी लौह लेखिनी से प्रसूत साहित्य उनके व्यक्तित्व की सर्वाङ्गीणता का परिचायक है। धर्म एवं समाज के शाश्वत मूल्यों के प्रति उनका समर्पित भाव था। वह धर्म में अनावश्यक राजनीतिक हस्तक्षेप के विरोधी तथा धर्माङ्कुश सम्वलित शासन पद्धति के परिपोषक थे।

उनके लौकिक आत्मविलास का डा० बलजिन्नाथ पण्डित जी ने इस जीवनवृत्त में सम्यक् प्रतिपादन किया है। उनका अलौकि— "आत्मविलास" वाणी से परे का विषय है। यह ग्रन्थ लोकोपकारक एवं सद्धर्मपथ प्रदर्शक हो ऐसी श्रीमन्नारायण से प्रार्थना है। इतिशम्।

कार्तिक कृष्ण द्वादशी
वि० सं० २०४६

—**नंदनंदनानंद सरस्वती**
केदार घाट, वाराणसी

अनन्तश्रीविभूषित
स्वामी माधवाश्रम (शुकदेव) स्वामी जी महाराज
महामन्त्री अ० भा० धर्मसंघ,
लुधियाना (पंजाब)।

कार्तिक कृष्ण १०,
वि० सं० २०४६

सिद्ध, सन्त, योगी एवं सर्वतन्त्र स्वतन्त्र अनन्त श्री स्वामी अमृतवाग्भवाचार्य जो प्राचीन आर्य परम्परा के रक्षक महापुरुष थे। शिमला के निकट कण्डाघाट तथा अन्यत्र भी उनके अनेक बार दर्शन हुए। सनातन धर्म के प्राणभूत वेद एवं वर्णाश्रम में उनकी दिव्य रुचि थी। योगशास्त्र, दर्शनशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र, समाज शास्त्र, राजनीति शास्त्र एवं धर्मशास्त्र के अधिकारी विद्वान थे। उनके द्वारा विरचित स्तोत्र साहित्य में उनको रसात्मिका अथवा रागात्मिका भक्ति के दर्शन होते हैं। वे महापुरुष अनन्य भगवद्भक्ति तथा भागवत के भी वैसे ही रसिक थे जैसे शिव-शक्ति तत्व एवं भारतीय दर्शन की सभी विधाओं के। प्रकाश स्तम्भ भूत यह महापुरुष मूलत: अ० भा० धर्मसंघ के सिद्धान्तों के परिपोषक थे। डा० बलजिन्नाथ पण्डित जी द्वारा लिखित उनका यह जीवनवृत्त प्राणीमात्र का पथ प्रदर्शक एवं धर्मपालनपुरस्सर ऐहिकामुष्मिक अभ्युदय का हेतु होगा ऐसी आशा एवं विश्वास है।

—माधवाश्रमः
(शुकदेव स्वामी)

डा० एस० एन० तिक्कू
ए० एम० एस०, बी० एच० यू०, डी० ओ० एल० (पंजाब)
इन्चार्ज आयुर्वेदिक हास्पिटल
श्री बनारसीदास चांदी वाला स्मारक सेवा केन्द्र
कालकाजी, नई दिल्ली-११००१९

प्रातः स्मरणीय श्री अमृतवाग्भवाचार्य जी का 'जीवनचरित' मुद्रित हो रहा है। श्री आचार्य जी वर्तमान शताब्दी के महान् गुप्त विभूतियों की श्रेणी में गणनीय है। उनकी संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डितों में विशिष्टता तो थी ही इसके अतिरिक्त वह सिद्धहस्त लेखक और आशु कवि भी थे। उनकी 'राष्ट्रालोक' रचना उनकी अद्‌भुत प्रतिभा, देशभक्ति एवं नवीन राष्ट्रीयता का ज्वलन्त उदाहरण है। उनकी बहुमुखी विद्वत्ता तथा उनकी शास्त्र साधना अत्यन्त श्लाघनीय है। उनकी धार्मिक साधना तथा उनकी गुप्त एवं अत्यन्त रहस्यपूर्ण दैवी शक्तियां भी विलक्षण थीं। हमें तो उनके जोवनचरित के प्रकाशित होने पर परम सन्तोष और हर्ष हो रहा है।

इसके लिये उनके सभी भक्त और सेवक अपने को कृतकृत्य मानते होंगे ऐसा मेरा विचार है। यह संस्था जिसने परम पुनीत कार्य को संपन्न किया है धन्यवाद की पात्र हैं।

मैं इस ग्रन्थ के विद्वान् लेखक डा० बलजिन्नाथ पण्डित को जिन्होंने विविध स्रोतों से महात्मा जी के जीवन का इतिवृत्त संगृहीत कर के ग्रन्थ को सम्पूर्ण किया है, हार्दिक धन्यवाद और बधाई देता हूं। वास्तव में ऐसे गुप्त सिद्ध पुरुष का जीवन चरित लिखना सुकर नहीं था।

डा० श्रीनाथ तिक्कू

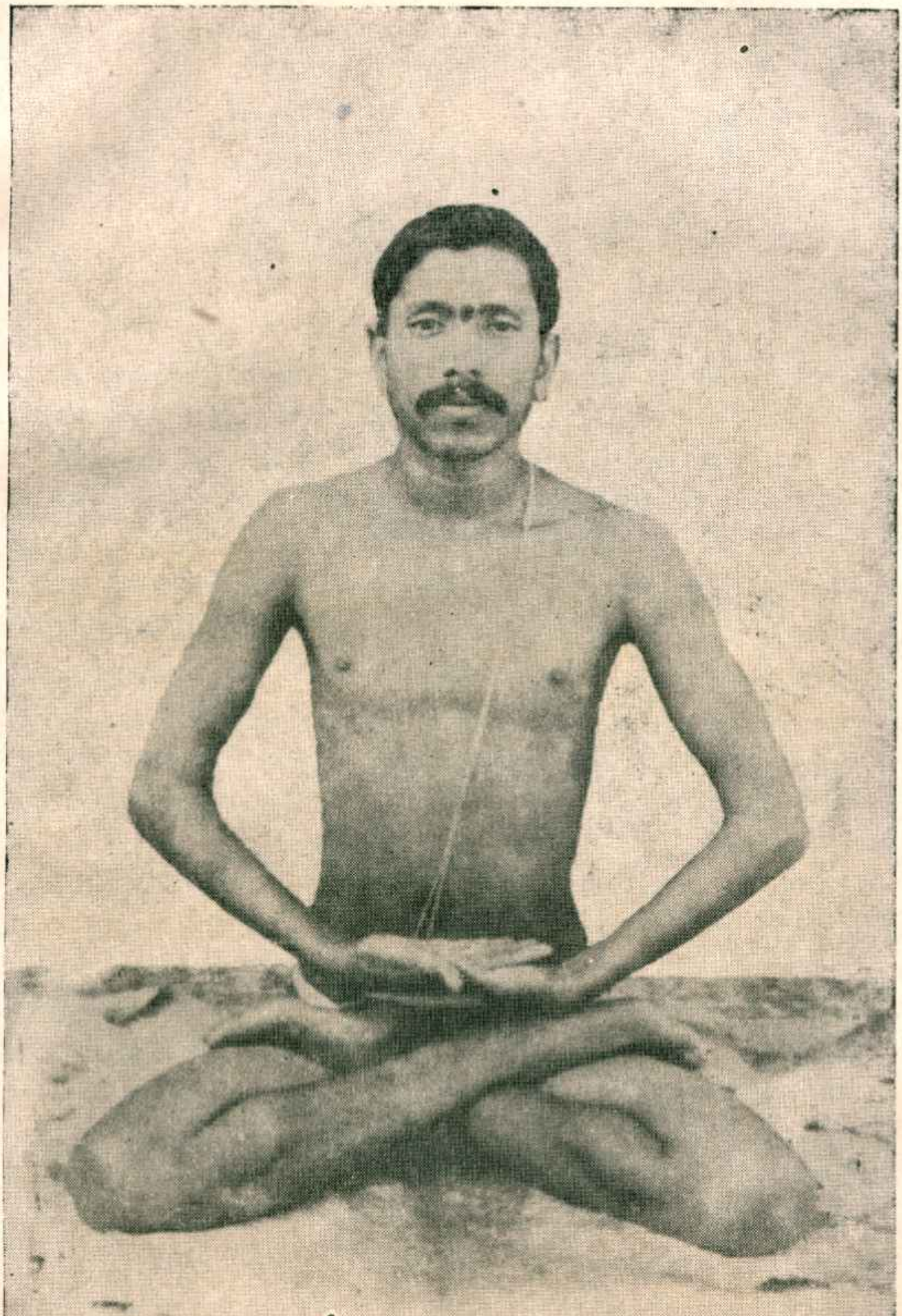

शाम्भी योग मुद्रा में चतुर्थ दशक के किसी वर्ष का चित्र

अध्याय १

अतीत जन्मों की घटनाएं

श्री **चखमा बाबा** के द्वारा सिखाई हुई योग धारणा के अभ्यास से पूज्यपाद आचार्य जी को अपने अतीत जन्मों की जो स्मृति हुई थी उसके आधार पर उन्होंने जो कुछ मुझे स्वयं कहा है या लिखकर रखा है उसी के आधार पर यह अध्याय लिखा जा रहा है। तदनुसार आज से लगभग दो ढाई सौ वर्ष पूर्व पूज्य पाद जी अन्तरिक्ष लोक में स्थित किसी ऊँचे विद्याधरभुवन में रहा करते थे। तन्त्रालोक में और 'स्वच्छन्द तन्त्र' में विद्याधरों के मुख्य तीन भुवनों का वर्णन मिलता है। उन भुवनों में भिन्न-भिन्न स्तरों के विद्याधर नाम के प्राणी निवास करते हैं। उन्हीं भुवनों में से किसी एक भुवन में पूज्यपाद जी निवास करते थे। जैसा कि उन्होंने मुझे एक बार स्वयं कहा, विद्याधरों के भुवन पृथ्वी से ऊपर और स्वर्लोक से नीचे अन्तरिक्ष लोक में कहीं विद्यमान हैं। उन भुवनों के प्राणी सूक्ष्म शरीरों में ही रहते हैं। उनके वे शरीर लगभग वैसे ही शरीर होते हैं जैसे शरीरों के द्वारा हम लोग स्वप्न दशा में काम किया करते हैं। जैसे हम स्वप्न दशा में अपने अभीष्ट ज्ञानमय और क्रियामय व्यवहारों को चलाया करते हैं और केवल संकल्पों ही के द्वारा चलाया करते हैं; उस सूक्ष्म सृष्टि के प्राणी भी सङ्कल्प मात्र से ही सभी ज्ञान क्रियात्मक व्यापारों को करते रहते हैं। हम लोगों को जागृत् अवस्था में स्थूल पदार्थों के योग से तृप्ति मिलती है, परन्तु स्वप्न में वह तृप्ति विषयों के संकल्प मात्र से ही हुआ करती है। उस अवस्था में हमारे योग्य विषय भी मन के सङ्कल्प से ही बने हुए होते हैं। उसी तरह से सूक्ष्म शरीरों वाले प्राणी उत्कृष्ट भुवनों में साङ्कल्पिक विषयों का ही उपभोग करते हैं। उन्हें स्थूल विषयों की आवश्यकता पड़ती ही नहीं। अन्तर अवश्य इतना है कि हमारा स्वप्न संसार अस्थिर और क्षणभंगुर होता है, क्योंकि हम चिरकाल तक उस संसार में ठहर नहीं पाते; तुरन्त जाग पड़ने पर हमारा वह संसार क्षण मात्र में ही विलीन हो जाता है। परन्तु उत्कृष्ट भुवनों में रहने वाले प्राणी स्थिरतया सूक्ष्म शरीरों में ही चिरकाल तक निवास किया करते हैं। हमारी सृष्टि के प्राणी लगातार उत्पन्न होते रहते हैं और मरते रहते हैं, परन्तु सूक्ष्म भुवनों के प्राणी

वहां के सूक्ष्म शरीरों में चिरकाल तक जीवित रहते हैं। इसी बात को आधार बनाते हुए हम लोग उन्हें अमर कहते हैं। पूज्यपाद जी के शब्दों में उन सूक्ष्म शरीरों में हमारी अपेक्षा सहस्रों गुणा बढ़-चढ़ कर सामर्थ्य होती हैं। विषय भोग में भी और योग साधना में भी उन प्राणियों में हमारी अपेक्षा सहस्रों गुणा अधिक क्षमता हुआ करती है। परन्तु हम लोगों की तरह उन प्राणियों में भी काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, स्पर्धा, द्वेष आदि दुर्गुण हुआ ही करते हैं। उन भुवनों में भी तरह तरह की प्रवृत्तियों और भिन्न-भिन्न स्वभावों के प्राणी रहा करते हैं। ऐसी बातें भी पूज्यपाद जी ने मुझे स्वयं कहीं हैं। उस लोक के उस जीवन की स्मृति के उद्‌बुद्ध होने के विषय में ऐसा उन्होंने कहा था कि जैसे कभी किसी तीव्र उद्‌बोधक कारण के प्रभाव से कोई सर्वथा भूली हुई बात एकदम स्मृति-पटल पर चमक उठती है, उसी तरह से उन भूले हुए जन्मों की स्मृति उन्हें उद्‌बुद्ध हो गई थी।

जैसे इस मर्त्यलोक के प्राणियों को भिन्न-भिन्न वर्गों में गिना जाता है उदाहरणार्थ मनुष्य, पक्षी, पशु, कृमि, कीट, वृक्ष, पौधे इत्यादि, वैसे ही उन सूक्ष्म और सूक्ष्मतर भुवनों के प्राणी भी कई एक वर्गों के हुआ करते हैं। उन्हीं वर्गों मे से एक वर्ग विद्याधरों का है। विद्याधर विद्याओं के व्यसनी होते हैं। वे सङ्गीत आदि ललित कलाओं से बहुत प्रेम रखते हैं और उनमें विशेषतया प्रवीण होते हैं। पूज्यपाद जी जब अभी बालक ही थे तो तो उन्होंने अपने पिता जी से धर्माचार्य की पञ्चस्तवी का एक श्लोक सुना जिसमें विद्याधरों द्वारा की जाती हुई जगदम्बा की पूजा का वर्णन किया गया है। श्लोक सुनने पर उन्हें उसके अर्थ को जानने की इच्छा हुई। जब पिता जी ने श्लोक का अर्थ सुना दिया तो, उनके कहे अनुसार, उन्हें अर्थ को सुनते ही एक ऐसी तीव्र वेदना हो गई; कि मानो उनके हृदय को कोई चीर रहा है। क्षणमात्र की उस वेदना से वे मूर्छित हो गए। पश्चात् कई महीनों तक उस मूर्छा के रोग ने उन्हें पकड़े रखा। उन्होंने एक बार उस घटना का काफी विस्तार से किया गया वर्णन श्री स्वाध्याय के किसी अङ्क में प्रकाशित किया था। उस लेख का पुनः प्रकाशन उनके जयपुर वाले भक्तों ने सन् १९८३ ई० में एक पुस्तिक में किया। उस लेख के द्वारा एक तो विद्याधरों के जीवन का स्फुट चित्र सामने आ जाता है, दूसरे ऐसा प्रतीत होता है कि श्लोक का अर्थ सुनते ही पूज्यपाद जी के अवचेतन (subconscious) मन में भुक्तपूर्व विद्याधर भुवन की एकदम स्मृति उद्‌बुद्ध हो गई और उसी स्मृति से होने वाली तीव्र वेदना से वे मूर्छित हो गए। फिर उसी अज्ञात वेदना ही के कारण उन्हें मूर्छा का रोग महीनों लगा रहा। महा कवि श्री कालिदास ने भी मनोविज्ञान के इस सिद्धान्त के अनुसार दुष्यन्त का वर्णन अभिज्ञान शाकुन्तल में इस तरह से किया है—

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुको भवति यत् सुखितोऽपि जन्तुः।
तच्चतेसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावास्थिराणि जननान्तरसौहृदानि ॥

(अभि० शा० ५)

अर्थ—यदि कोई सुखी मानव कभी किन्ही सुन्दर दृश्यों को देखकर या मधुर शब्दों को सुनकर बिना कारण के ही व्याकुल हो जाए तो समझना चाहिए कि उसे न जानते हुए ही अतीत जन्म की किन्ही स्नेहमयी घटनाओं की अन्तः स्मृति हो रही है जो प्रेम के भाव के रूप में उसके भीतर स्थिरतया संस्कार रूप में ठहरी रहती हैं । जैसा कि पीछे कहा गया, आगम शास्त्रों में विद्याधरों को तीन मुख्य वर्गों में बांटा गया है। वे हैं—अधम, मध्यम और उत्तम। श्री पूज्यपाद जी इन तीन वर्गों में वहां किस वर्ग के प्राणी थे, उनका नाम वहां क्या था, निकट सम्बन्धी कौन थे, गुरु कौन थे और उनके साथ प्रेम या वैर करने वाले कौन-कौन थे, इन इन बातों के विषय में हमने उनसे कभी कुछ पूछा नहीं। उन्होंने स्वयं इस इस तरह की बातें बताई थीं कि उस उत्तम भुवन में रहते हुए भी वे भोगी न होकर एक साधक साधु ही थे। वहां कुछ लोगों को उनसे ईर्ष्या हो गई और उन्होंने उनके गुरु के पास जाकर शिकायत की कि उनका चरित्र ठीक नहीं है। साथ एक महिला को भी साक्षी के रूप में प्रस्तुत कर दिया। इस बात पर गुरु जी अत्यन्त रुष्ट हो गए और इन्हें शाप दिया कि "गच्छ मर्त्यलोकम्"। उनके कहे अनुसार, पश्चात् गुरुजी को इस बात का पूरा पता लग तो गया कि शिकायत सर्वथा झूठी थी। परन्तु शाप दे चुके थे। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि जब गुरु जी ने निरपराध होते हुए भी उनको क्रोध से खूब डांटा होगा तो उस निष्कारण डांट से आवेश में आ करके पूज्यपाद जी ने भी डट कर जोश भरे शब्दों में कुछ कहा होगा। उससे गुरु जी की क्रोधाग्नि अधिक प्रज्वलित हुई होगी और वे उसके आवेश में शाप दे गए होंगे। उसके फल स्वरूप पूज्यपाद जी को चार बार इस मर्त्यलोक में जन्म लेना पड़ा। इस विषय में उन्होंने स्वयं इतना ही लिखा है कि उन्होंने गुरु की अवज्ञा की और इस पर गुरु ने उन्हें शाप दिया। चखमा बाबा के कहे अनुसार पांचवीं बार पुनः यहां जन्म लेना था। जो जगदम्बा की कृपा से टल ही गया। वस्तुतः जब पिछले तीसरे जन्म में वे एक राजा थे तो एक बड़ा ही धर्मात्मा जैन वहां उनका मन्त्री था जो वहां काफी लम्बी आयु तक जीवित रहा। उसने वहां का शरीर छोड़ कर **हरदोई** में एक भार्गव वंश के धनाढय ब्राह्मण के घर में जन्म लेना था और कुछ समय के पश्चात् पूज्यपाद जी ने भी वर्तमान शरीर को छोड़कर उस धनाढच ब्रह्मण के पुत्र के

रूप में वहीं जन्म लेना था। पूज्यपाद जी को अपने उस मन्त्री ने उस पूर्व शरीर को छोड़कर हरदोई में जन्म लेने को जाते हुए दर्शन देकर प्रार्थना की थी कि कुछ समय पश्चात् वे भी उधर उसके पुत्र के रूप में जन्म लेवें। इस घटना से उन्हें **चखमा बाबा** की भविष्य वाणी याद आ गई। पुनर्जन्म के भय से उन्होंने जगदम्बा से बहुत अधिक आतुरता से प्रार्थना की कि उन्हें पुनः इस मर्त्य जीवन में आना न पड़े। जगदम्बा ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया और उन्हें पुनर्जन्म से विमुक्त ही कर दिया इस तरह से उन्हें पहले से ही उस पांचवें जन्म से मुक्ति मिली। मेरा ऐसा अनुमान है कि उस पांचवें जन्म में अवश्य ही भोगे जाने वाले कर्मों के फल का भोग करने के लिए उनके वर्तमान शरीर की आयु को बढ़ाया गया और जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने उन अवश्य भोक्तव्य कर्मों के फल का भोग पूरा कर दिया। जयपुर वाली सन् १९८३ वाली पुस्तिका के अनुसार पूज्यपाद जी ने ६५ वर्ष की आयु को पूरा करके ही हरदोई में पुनर्जन्म लेना था। तदनुसार उनकी आयु को जगदम्बा ने पन्द्रह वर्ष के लिए बढ़ा दिया। परन्तु उस पुस्तिका में वर्ष संख्या के विषय में कोई प्रमाण नहीं दिया गया है। पूज्यपाद जी ने इस विषय में मुझ से केवल इतना ही कहा है कि एक चिरंजीवी को छोड़कर उनके पूर्वज सभी पच्चास वर्ष की आयु से पहले ही परलोक को सिधार गए और केवल वे ही उस अवधि से आगे बढ़ गए।

काव्यों और शास्त्रों में कहा गया है कि देवगणों के भुवनों से जब कोई प्राणी इस मर्त्यलोक में जन्म लेने के लिए उतर आता है तो सर्वथा दरिद्र बन कर नहीं उतरता है। देवलोक के अधिकारी उसके पुण्यों का कुछ भाग बचाकर रखते हैं, जिसे साथ लेकर वह इस लोक में उतरता है। वह पुण्य शेष उसके प्रारब्ध का एक आवश्यक अङ्ग बना रहता है। उसी के फल को यहां 'स्वर्गशेष' कहते हैं। तो पूज्यपाद श्री आचार्य जी भी पुण्यशेष को साथ लेकर ही विद्याधरों के भुवन से इस पृथ्वी पर उतर आए। उसके फलस्वरूप वे एक सुविशाल राज्य के एक धार्मिक राजपूत शासक के पुत्र के रूप में इस मर्त्यलोक में प्रकट हो गए। उनका लालन, पालन, शिक्षा, दीक्षा सब कुछ सम्राटों के ही ढंग से होता रहा। समय आने पर वे उस राज्य के शासक बने और काफी समय तक शासन करते रहे। उनका वह जन्म यहां लगभग सन् १८२० ई० के आस पास हुआ। आगे शासक बन कर लगभग सन् १८९० ई० तक शासन करके उन्होंने उस शासक शरीर को छोड़ दिया। उस जन्म को उन्होंने सनातनी धर्म परम्परा के अनुसार निभाया। वहां वे शाक्त साधना में दिलचस्पी लेते रहे। उनकी इष्ट देवी वहां भगवती ललिता त्रिपुर सुन्दरी थी। ललिता सहस्र नाम का नियमतः पाठ भी करते रहे और उसके पाठों का किसी विशेष संख्या को पूर्ण करने का उन्होंने वहां सङ्कल्प भी कर रखा था। परन्तु वह सङ्कल्पित पाठ संख्या उनसे वहां पूरी नहीं हो

की घटना की काफी जांच महाराजा ने पोलिस के द्वारा करवाई तो थी, परन्तु किसी भी बात को विश्वसनीय प्रमाणों के आधार पर प्रमाणित नहीं किया जा सका। आकस्मिक मृत्यु के विषय में एक साक्ष्य ऐसा भी सामने आया कि महात्माजी अभ्रक की भस्म खाया करते थे और उन दिनों जो भस्म लेते रहे वह कच्ची थी और उस कच्चीं अभ्रकभस्म ने उनके प्राण ले लिए। विश्वसनीय प्रमाण के अभाव के कारण महाराजा न तो किसी को दण्ड ही दे सके, न मृत्यु के वास्तविक कारण की घोषणा ही कर सके और न कोई और कार्यवाही ही कर सके। उधर से महात्मा जी के अनुयायियों ने जिन स्वकपोलकल्पित कहानियों को देश भर में फैला दिया उनका आगे इतना प्रचार हो गया कि कल्पित कहानियां ही सच्चा इतिहास समझी जाने लगीं; इतनी सत्य समझी जाने लगीं कि वास्तविक सत्य की खोज करने के प्रति किसी को भी प्रवृत्ति हुई ही नहीं और न अब भी हो रही है। अस्तु। कलिकाल में प्रायः ऐसा होता ही रहता है।

उस जन्म की बहुत सी बातें पूज्यपाद जी को याद आ गई थीं। उस राज प्रासाद की जैसी धुन्धली स्मृति उन्हें जाग उठी थी। मैंने उसी के अनुरूप उस प्रासाद को पाया। वहां के शासकों के चित्रों को मैंने देखा तो मुझे उस शासक के चित्र की और पूज्यपादजी की मुखाकृति में परस्पर काफी समानता दीख पड़ी। वहां उनके पास करांची का एक जौहरी रत्न विक्रय के लिए प्रायः आया करता था। उस जौहरी ने पुण्य कर्मों के फल से कश्मीर में एक धार्मिक पण्डित परिवार में जन्म लिया था। श्रीनगर में पूज्यपाद जी उनके घर में बहुत बार निवास करते रहे। वे भी बड़े स्नेह और बड़ी श्रद्धा से उनकी सेवा करते रहे। श्रीनगर में उन्हें **टिकालाल** खजांची कहते थे। उन्हें देखते ही पूज्यपादजी को उनके पूर्वजन्म के जौहरी शरीर की याद आया करती थी। उस पूर्वजन्म में उनके जैन मन्त्री की बात का उल्लेख पीछे किया गया है। बृन्दावन में उन्होंने एक बार उस जन्म की एक बहिन को देखा था जो किसी छोटे से राज्य की रानी थी। उसका नाम सुनते ही उन्हें उस बहिन की शादी के उत्सव की सभी बातें स्मृति पटल पर जाग उठीं। उस विवाह में उनके उस जन्म के पिता ने कन्यादान कन्या के मामा के द्वारा करवाया था। क्योंकि एक छोटे से राजा के साथ ऐसा सम्बन्ध जोड़ने की रस्म में उनके साथ बैठना उन्हें अपनी शान के विपरीत प्रतीत हुआ था। पूज्यपाद जी के कथन के अनुसार वर्तमान जीवन में उन्होंने अपने बड़ों से यह भी सुना था कि जब वे ढाई तीन वर्ष की आयु के थे तो तब प्रायः कहा करते थे कि यह मेरा घर नहीं है। मेरा घर तो अति विशाल है, सुन्दर है और समृद्ध है।" उन्होंने स्वयं लिखा भी है कि उन्हें शैसव में अपना घर प्रायः अपना नहीं लगता था, परन्तु पश्चात् वैसे संस्कार धीरे-धीरे धूमिल होते गए। फिर उन्होंने यह भी कहा

है कि उनके बड़ों के अनुसार वे शैशव में कभी कभी किन्हीं ऐसे शब्दों का प्रयोग किया करते थे जिनका प्रयोग उत्तर प्रदेश में न होकर किसी अन्य प्रदश में ही हुआ करता है। वे कहा करते थे कि ज्यों-ज्यों शैशव बीतता गया और कौमार अवस्था आती गई, त्यों-त्यों वैसी-वैसी धूमिल स्मृतियों के संस्कार दबते-दबते मिट ही गए। तब तक मिटे ही रहे जब चखमा बाबा के द्वारा सिखाई गई साधना के प्रभाव से स्मृति पुन: जाग उठी।

पूज्यपाद जी को अपने उस पूर्वजन्म की राजधानी में पुनः जाने में भय लगता था। एक बार गए भी थे; परन्तु दूसरे ही दिन वहां से लौटे। वे कहते थे कि मन पर विश्वास नहीं करना चाहिए, क्योंकि मन स्वभाव से ही अस्थिर और चञ्चल होता है। यदि मन पर उधर की वासना सवार हो जाए, तो क्या पता कि कहीं उधर जाकर पुन: जन्म लेना पड़े" उनके एक भक्तजन उस नगरी में एक अच्छे अधिकारी थे। बहुत बार उन्हें उधर आने के लिए आग्रह किया करते थे। आखिर एक बार उन्हें उधर आने का वचन दे ही गए और कह गए कि अमुक रविवार को मोटर लेकर आ जाना तो हमें अपने साथ ले चलना। कारणवशात् उस रविवार से पूर्व शनिवार को उन अधिकारी महोदय को सरकारी काम के लिए दूर कहीं जाना पड़ा और उन्होंने फोन द्वारा ऐसा सन्देश उन्हें भेज दिया। दूसरे ही दिन पूज्यपादजी उस नगर को छोड़कर दूर किसी और नगर को चले गए। जब वे अधिकारी पुन: अपने स्थान पर पहुंचे और फोन करके पता किया तो उन्हें विदित हो गया कि पूज्यपादजी दूर कहीं चले गए हैं। इस तरह से उन्होंने उस राजधानी में जाने के कार्यक्रम को सदा के लिए टाल ही दिया।

राजलक्ष्मी की मादक और मोहक शक्ति इतनी प्रबल होती है कि उसके प्रभाव से विवेकी राजा भी बहुत बार अकार्य कर बैठते हैं। बाण भट्ट की कादम्बरी के शुकनास के उपदेशों के प्रकरण में राजलक्ष्मी के ऐसे दुष्प्रभावों का विस्तार से वर्णन किया गया है। पूज्यपादजी से भी उस जन्म में क्या मालूम कितने ऐसे दुष्कर्म प्रमादवश हो गए हों। फिर राजा के अमात्य, मन्त्री प्रशासक भी जो-जो अन्याय करते रहते है, उनका आंशिक फल राजा को भी भोगना पड़ता है। तो उस शासक जीवन में पूज्यपाद जी के हाथों जो भी थोड़े बहुत दुष्कर्म हुए थे वे उनके वर्तमान जीवन में अपना फल दे ही गए। इसी कारण से इस जीवन के अन्तिम दो तीन वर्ष में उन्हें अनेकों रोगों ने घेर कर रखा। पूज्यपादजी को स्मरण था कि अपने शासकीय अधिकार के दुष्प्रयोग से एक बार उन्होंने एक व्यक्ति के साथ घोर अन्याय किया था, तो वर्तमान जन्म में गोविन्दानन्द नामक एक साधु के वेष में घूमते हुए उसी व्यक्ति ने नालागढ़ में पूज्यपादजी को भोजन के साथ कोई विषैली वस्तु खिला दी जिससे उन्हें महीनों भर भगन्दर महारोग से अत्यन्त कष्ट

रूप में वहीं जन्म लेना था। पूज्यपाद जी को अपने उस मन्त्री ने उस पूर्व शरीर को छोड़कर हरदोई में जन्म लेने को जाते हुए दर्शन देकर प्रार्थना की थी कि कुछ समय पश्चात् वे भी उधर उसके पुत्र के रूप में जन्म लेवें। इस घटना से उन्हें **चखमा बाबा** की भविष्य वाणी याद आ गई। पुनर्जन्म के भय से उन्होंने जगदम्बा से बहुत अधिक आतुरता से प्रार्थना की कि उन्हें पुनः इस मर्त्य जीवन में आना न पड़े। जगदम्बा ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया और उन्हें पुनर्जन्म से विमुक्त ही कर दिया इस तरह से उन्हें पहले से ही उस पांचवें जन्म से मुक्ति मिली। मेरा ऐसा अनुमान है कि उस पांचवें जन्म में अवश्य ही भोगे जाने वाले कर्मों के फल का भोग करने के लिए उनके वर्तमान शरीर की आयु को बढ़ाया गया और जीवन के अन्तिम वर्षों में उन्होंने उन अवश्य भोक्तव्य कर्मों के फल का भोग पूरा कर दिया। जयपुर वाली सन् १९८३ वाली पुस्तिका के अनुसार पूज्यपाद जी ने ६५ वर्ष की आयु को पूरा करके ही हरदोई में पुनर्जन्म लेना था। तदनुसार उनकी आयु को जगदम्बा ने पन्द्रह वर्ष के लिए बढ़ा दिया। परन्तु उस पुस्तिका में वर्ष संख्या के विषय में कोई प्रमाण नहीं दिया गया है। पूज्यपाद जी ने इस विषय में मुझ से केवल इतना ही कहा है कि एक चिरंजीवी को छोड़कर उनके पूर्वज सभी पच्चास वर्ष की आयु से पहले ही परलोक को सिधार गए और केवल वे ही उस अवधि से आगे बढ़ गए।

काव्यों और शास्त्रों में कहा गया है कि देवगणों के भुवनों से जब कोई प्राणी इस मर्त्यलोक में जन्म लेने के लिए उतर आता है तो सर्वथा दरिद्र बन कर नहीं उतरता है। देवलोक के अधिकारी उसके पुण्यों का कुछ भाग बचाकर रखते हैं, जिसे साथ लेकर वह इस लोक में उतरता है। वह पुण्य शेष उसके प्रारब्ध का एक आवश्यक अङ्ग बना रहता है। उसी के फल को यहां 'स्वर्गशेष' कहते हैं। तो पूज्यपाद श्री आचार्य जी भी पुण्यशेष को साथ लेकर ही विद्याधरों के भुवन से इस पृथ्वी पर उतर आए। उसके फलस्वरूप वे एक सुविशाल राज्य के एक धार्मिक राजपूत शासक के पुत्र के रूप में इस मर्त्यलोक में प्रकट हो गए। उनका लालन, पालन, शिक्षा, दीक्षा सब कुछ सम्राटों के ही ढंग से होता रहा। समय आने पर वे उस राज्य के शासक बने और काफी समय तक शासन करते रहे। उनका वह जन्म यहां लगभग सन् १८२० ई० के आस पास हुआ। आगे शासक बन कर लगभग सन् १८९० ई० तक शासन करके उन्होंने उस शासक शरीर को छोड़ दिया। उस जन्म को उन्होंने सनातनी धर्म परम्परा के अनुसार निभाया। वहां वे शाक्त साधना में दिलचस्पी लेते रहे। उनकी इष्ट देवी वहां भगवती ललिता त्रिपुर सुन्दरी थी। ललिता सहस्र नाम का नियमतः पाठ भी करते रहे और उसके पाठों का किसी विशेष संख्या को पूर्ण करने का उन्होंने वहां सङ्कल्प भी कर रखा था। परन्तु वह सङ्कल्पित पाठ संख्या उनसे वहां पूरी नहीं हो

सकी। सहस्रों ही की पाठ संख्या शेष रह गई। चखमा बाबा के द्वारा सिखाई गई साधना के अभ्यास से जब इस बात की स्मृति उन्हें जाग उठी तो तब से उस संख्या को पूरा करने के लिए प्रतिदिन तीन-तीन बार सहस्र नाम का पाठ करने लगे। उस पाठ संख्या का लेखा उनकी डायरियों में कई एक स्थानों पर दिया गया है। आगे जब उनका शरीर बहुत अस्वस्थ और शिथिल होता गया तो १२-४-४२ ई० को उन्होंने सहस्र नाम के शेष पाठों को पूरा करने का काम अपने प्रिय शिष्य, **भरतपुर** निवासी, **मिश्र गोविन्द शर्मा** को सौंप दिया और उन्होंने उस पाठ संख्या को पूरा कर दिया। वे उस जन्म में प्राचीन परम्परा में प्रचलित राजधर्म के अनुसार शासन करते रहे और जीवन यात्रा को भी निभाते रहे। राजधानी में आने वाले विद्वानों और सन्त महात्माओं का सम्मान और यथोचित सेवा भी करते रहे और साथ-साथ राजोचित सुखों का भोग भी करते रहे। बड़े ऐश्वर्य से रहते रहे।

एक बार एक विद्वान् सन्यासी वहां आए। उन्होंने अपना एक नवीन पन्थ भी चलाया था और उनके अनुयायी भी काफी लोग बन चुके थे। तो परम्परा के अनुसार महाराजा ने उनका भी यथोचित आतिथ्य सत्कार किया, यद्यपि उनकी अभिनव धार्मिक परम्परा से और उनके दार्शनिक विचारों से वे जराभर भी सहमत नहीं थे और न ही उनके प्रभाव से जरा भर भी प्रभावित हुए थे। उनका सत्कार करते हुए भी वे अपने सनातनी शाक्त मार्ग से ही लगातार उपासना करते रहे और राजोचित ढङ्ग से ही जीवन बिताते रहे। उन बातों में कोई भी अन्तर नहीं आया। इन बातों को उन्होंने मेरे से स्पष्ट शब्दों में कहा कि वे केवल औपचारिक तौर पर ही ऐसे साधु महात्माओं का सत्कार करते रहे। वैसा करते हुए भी अपने राजोचित सुखों का भी उपभोग करते ही रहे। उनके प्रासाद में नाचने गाने वाली स्त्रियां भी आती रहीं। अपनी कला का प्रदर्शन करके और पारितोषिक पाकर चली जाती रहीं। राज प्रासाद में कभी कोई ऐसी स्त्री या ऐसा पुरुष निवास नहीं कर पाया। प्रासाद की, और विशेष करके अन्तः पुर की, व्यवस्था प्राचीन सनातनी परम्परा के ही अनुसार चलती रही। यह बातें भी उन्होंने मुझ से स्वयं कही हैं।

उस समय वहां एक अवांछनीय घटना हुई। उनके द्वारा अतिथिशाला में ठहराए गए उन अपरोक्त महात्मा जी की अकस्मात् मृत्यु हो गई। उनके अनुयायी कहने लगे कि उन्हें विष दिया गया। उस नवीन पन्थ के महत्त्व को बढ़ाने के प्रयोजन से उन अनुयायियों की परम्परा में आगे अनेकों ही कहानियां घड़ली गई जो सारी की सारी असत्य और सर्वथा तथ्यहीन हैं, परन्तु जिन्हें आज कल सच्चे इतिहास के रूप में समझा जा रहा है। महात्मा जी की अकस्मात् मृत्यु

झेलना पड़ा और आगे जीवन भर के लिए अर्श का रोग उन्हें लगा ही रहा।

पूज्यपादजी ने **सन् १८९०** के लगभग उस शासक शरीर को छोड़ दिया और गुजरात कठियावाड़ के एक गांव में एक ब्राह्मण के घर में जन्म लिया। वहां केवल पांच छः वर्ष ही जीवित रहे। उधर की उन्हें कोई और स्फुट स्मृति जाग नहीं पड़ी। तदनन्तर उन्होंने तीसरा जन्म पश्चिमी पन्जाब में जि० झेहलम के किसी ग्राम में एक और ब्राह्मण के घर में ले लिया। वहां वे आठ दस वर्ष की आयु तक ही जीते रहे। उन्हें स्मरण था कि उधर उनके पिता एक पुरोहित थे और उनके एक भक्त यजमान उनके घर प्रायः आया करते थे जिनके कानों में सोने के कुण्डल हुआ करते थे। भरतपुर के श्री **सम्पूर्णदत्त** जी पूज्यपाद जी के संस्मरण में लिखते हैं कि उनका दूसरा जन्म पंजाब में और तीसरा जन्म गुजरात में हुआ था। मुझे भी पहले वैसा ही स्मरण था। परन्तु **सन् १९६२** में जब मैंने इस विषय पर भी पूज्यपाद जी से विस्तारपूर्वक बातचीत की तो उन्होंने स्पष्ट शब्दों में यही कहा कि दूसरा जन्म गुजरात में और तीसरा जन्म जि० झेहलम में हुआ था।

कश्मीर मण्डल में **मार्तण्ड (मट्टन)** नामक पत्तन में **शिवजी फोतेदार** नाम के एक धर्मात्मा सज्जन रहते थे। वे जब **बारामुला** में नियुक्त थे तो वहां पूज्यपाद जी की बड़े ही प्रेम से सेवा किया करते थे। उन्हीं दिनों बारामुला में चखमा बाबा भी थे। वे शिवजी के घर भोजन करने आए थे। वहां उन्होंने शिवजी को और पूज्यपाद जी को बताया कि किसी पूर्व जन्म में उनका परस्पर पिता पुत्र का सम्बन्ध था। शिवजी पिता थे और पूज्यपादजी उनके पुत्र थे। शिवजी एक राजा थे और पूज्यपादजी राजकुमार थे। वहां राजयक्ष्म रोग से राजकुमार का यौवन की आयु में ही देहान्त हो गया था। इन बातों पर पूज्यपादजी को विश्वास नहीं हुआ और इन्हें सच्चा सिद्ध करने के लिए चखमा बाबा को प्रमाण देने को कहने लगे। वे बोले कि हम आपको एक साधना सिखा देंगे जिसके छः महीनों के अभ्यास से आपको प्राचीन जन्मों की स्मृति जाग पड़ेगी। फिर शुभ मुहूर्त पर चखमा के पास जाकर पूज्यपादजी ने उस साधना को सीखा। तो उन्हें दो ही महीनों के अभ्यास से अपने गत उपरोक्त तीन मर्त्य जन्मों की और चौथे विद्याधर लोक वाले जीवन की स्मृति उद्‌बुद्धहो गई। जब इतने से ही उनके वर्तमान जन्म की मुख्य घटनाओं का समाधानहो गगा तो उन्होंने उनसे भी पिछले अन्य जन्मों की स्मृति को जगाने का यत्न नहीं किया। अतः शिवजी के साथ जिस जन्म में उनका पिता-पुत्र सम्बन्ध था, उस जन्म तक का अनुसंधान उन्होंने किया ही नहीं। फिर यह बात भी मन में आ गई कि और और पिछले जन्मों की स्मृति से क्या पता है किन-२ स्थानों को पुनः देखने की वासना सवार हो जाए, तो शिवजी के साथ किस प्राचीन जन्म में उन्हें सम्बन्ध था इस बात का अनुसन्धान उन्होंने किया ही नहीं। हां, यह बात सत्य है वर्तमान जन्म में शिवजी पूज्यपादजी से अत्यन्त स्नेह करते थे,

उपदेशक्रम में वे किसी अन्य महात्मा के शिष्य थे। फिर शिवाजी के ज्येष्ठ पुत्र **श्री जियालालजी फोतेदार** के साथ पूज्यपादजी को ऐसा स्वाभाविक और नैसर्गिक स्नेह था जिससे किसी जन्म का उनके साथ कोई घनिष्ठ सम्बन्ध अभिव्यक्त होता था। तो ऐसा प्रतीत होता है कि विद्याधर लोक में निवास से पहले ही पूज्यपादजी कभी इस मर्त्यलोक में एक राजकुमार थे जहां शिवजी उनके पिता थे। वह घटना काफी पुरानी हो सकती है।

अब पूज्यपाद जी को विद्याधर लोक भी अच्छा नहीं लगता था। मैंने एक बार पूछा था कि "वर्तमान जन्म के पश्चात् क्या आप पुनः उस लोक को जाएंगे," तो कहने लगे कि "वहां भी काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि भाव बहुत होते हैं। अत: उस लोक का जीवन हमें पसन्द नहीं।" इस पर मैंने पुन: प्रश्न किया कि "तब आप किस लोक को जाएँगे।" इस पर उन्होंने उत्तर दिया "हम उधर ही जाएंगे जिधर श्री जगदम्बा जाने का आदेश देवें। इस विषय में हम अपनी ओर से कोई भी सङ्कल्प नहीं करना चाहते हैं, क्योंकि हमारा जो भी सङ्कल्प होगा, वह जीव सङ्कल्प ही होगा, शिवसङ्कल्प नहीं होगा।" हमारा अपना अनुमान यह है कि वे सिद्धों के किसी भुवन के प्रति सिधार गए। हमारी यह भी आशा है कि वहां जाकर वे समुचित समय पर भारतवर्ष के और सनातनधर्म के पुनरुद्धार के लिए भी अवश्य ही कोई सफल यत्न करेंगे, क्योंकि भारतमाता की वर्तमान दुर्दशा उनसे सहन नहीं की जा सकती थी और सदा इस विषय की चिन्ता उन्हें लगी ही रहती थी कि भारत का प्रशासन और यहां की राजनीति सन्मार्ग पर आ जाए। भारत की हित कामना के विषय में वे उदासीन और तटस्थ नहीं थे और न ही सनातन धर्म की वर्तमान स्थिति के प्रति ही वैसे थे। उनके ऐसे संस्कारों से ही हम उपरोक्त बात के विषय में अनुमान करते हैं। फिर जब श्रीनगर में **सारिका देवी के आंगन** में मिले सिद्धमानव के साथ उनका विस्तृत संवाद किसी जन शून्य भवन में हुआ था। तब उन्होंने उस सिद्धमानव से यह प्रश्न किया था कि हमारी आगे क्या गति होगी।" इस पर वे सिद्ध मानव यही बोले थे कि यदि वह बात आप को बता दी जाए तो आप क्षण भर भी इस मर्त्यलोक में नहीं ठहर सकेंगे। तुरन्त ही आपका शरीरपात होगा।" उससे हमारा यह अनुमान है कि अपने अन्तिम मर्त्य शरीर को छोड़कर वे किसी ऐसे सिद्धजनों के भुवन को गए होंगे जहां का जीवन असीम और अनवाच्छिन्न आनन्द की अनुभूति का तथा विशेष अधिकारों वाला रहा होगा।

अध्याय २

पूर्वजों का संक्षिप्त इतिहास

अब पूज्यपाद श्री आचार्य महोदय के वर्तमान जीवन की गाथा आरम्भ होती है। यहां उनके पूर्वजों की अल्ल **'वरकले'** थी। वे महाराष्ट्री **ब्राह्मण** थ। उनका मूल निवास स्थान **विदर्भ** देश में था। वहां से आकर प्रयाग और वाराणसी मे रहा करते थे। गोत्र उनका **कौण्डिन्य** था। कृष्णयजुर्वेद की **तैत्तिरीय शाखा** उनका वेद था। **कुल देवी** उनकी एक वीरा भगवती रेणुका थी। इस प्रकार की जानकारी पूज्यपादजी ने स्वनिर्मित आत्मचरित के श्लोकों में भी दी है और **वरकलवंश-चरित** नामक प्रबन्धकाव्य में भी। उनके पूर्वज प्रायः सब के सब अच्छे विद्वान् हुआ करते थे। वेदपाठ में सुप्रवीण बनते रहते थे। व्याकरण आदि शास्त्रों का अच्छा अभ्यास किया करते थे। श्रौतस्मार्त्त धर्म के पक्के अनुयायी हुआ करते थे। आगमिक **श्रीविद्या** की भी प्रायः साधना किया करते थे। प्रायः विद्योपजीवी होते थे। अप्रतिग्राही **ब्राह्मण** होते हुए दान नहीं लेते थे। पुरातन काल में पौरोहित्य कर्म भी नहीं किया करते थे। पुराणों की, और विशेषकर भागवतपुराण की, कथा किया करते थे और कथा की समाप्ति पर जो थोड़ा बहुत चढ़ावा पोथी पर चढ़ता था, उसी पर सन्तोषवृत्ति से निर्वाह किया करते थे। छात्रों को पढ़ाया भी करते थे और पण्डित सभाओं तथा राजसभाओं में शास्त्रार्थ, धर्मनिर्णय आदि भी कभी-कभी किया करते थे। उससे उन्हें कभी-कभी अर्थलाभ भी हुआ करता था। उनकी धर्मनिष्ठा से और वैदुष्य से शासक लोग बहुत प्रभावित होते रहते थे। कई सौ वर्ष पहले उनके पास काफी भूसम्पत्ति और धनधान्य सम्पत्ति भी हुआ करती थी। भागवतपुराण पर उनकी विशेष श्रद्धा थी परन्तु उपासना क्रम में प्रायः शैव/शाक्त साधना का अभ्यास किया करते थे। भगवान् शिव के प्रायः अनन्य भक्त हुआ करते थे। श्रीविद्या की उपासना उन्हें कुलक्रम से ही प्राप्त होती रही और पूज्यपाद श्री आचार्यजी तक वह उसी क्रम से चलती ही आई।

पूर्वकाल में अतीव सम्पन्न और विद्याव्यसनी उस ब्राह्मण वंश में विदर्भ देश में एक बार एक विशेष धर्मात्मा विद्वान् प्रकट हुए। उनके दस पुत्र थे। उन्होंने एक बार सारे परिवार को साथ लेकर के अनेकों तीर्थों की यात्रा की। स्थान-